TIGHT BINDING BOOK

TEXT DARK WITHIN THE BOOK

UNIVERSAL LIBRARY

OU_176910

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 891.431 S53S Accession No. 982

Author शर्मा अनूप श्री

Title सुमन-कौल

This book should be returned on or before the date last marked below.

श्री-ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीज़

सुमनाञ्जलि

लेखक

श्री अनूप शर्मा

एम्० ए०, एल्० टी०

प्रकाशक

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४.

पहली बार
सितम्बर १९३९

मूल्य दो रुपया

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिन्टिंग प्रेस,
गिरगाँव, बम्बई

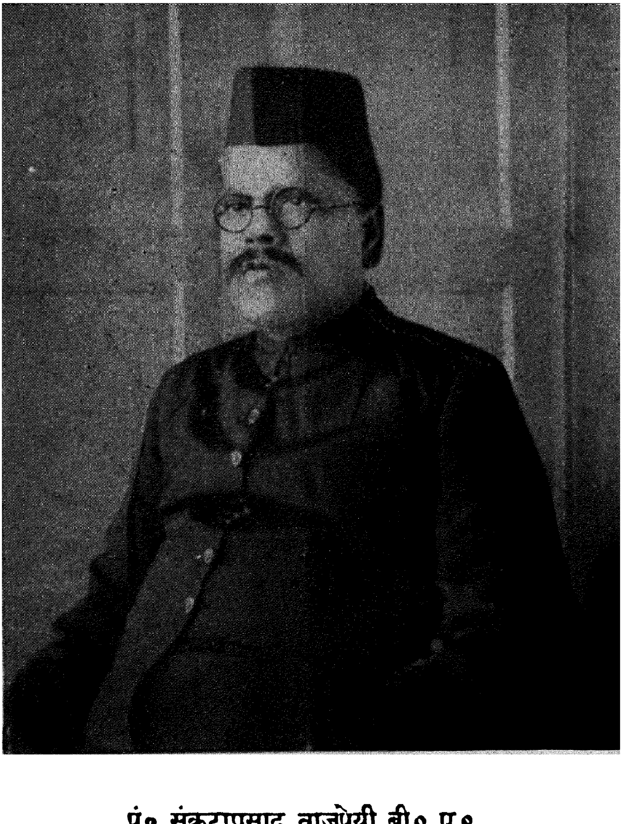

पं० संकटाप्रसाद वाजपेयी बी० ए०

पं० संकटाप्रसादजी वाजपेयी बी० ए०

रईस, लखीमपुर-खीरीके

कर-कमलोंमें

उनके एक अनुचरका

यत्किञ्चित्

भूमिका

साहित्यमें साधारणतया भी अनेकानेक विभिन्न धाराएँ सर्वदा एक ही साथ बहती रहती हैं, परन्तु परिवर्तन-कालमें तो उस प्रवाहमें बहनेवाली ऐसी पृथक् पृथक् धाराओंकी संख्याएँ ही नहीं बढ़तीं, किन्तु ऐसे सन्धि-युगमें हमें परस्पर-विभिन्न प्रभावों और आदर्शोंका अनूठा सम्मिश्रण तथा पृथक् पृथक् कलाओंका अविश्वसनीय सम्मिलन भी देखनेको मिलता है। यही कारण है कि यद्यपि ऐसे सन्धि-युगके साहित्यमें प्रायः विश्व-काव्यका अभाव ही रहता है, किन्तु फिर भी उस कालका साहित्य बहुत ही विविध, विभिन्न प्रकारका होता है; उसमें एक अनोखा वैचित्र्य हमें देखनेको मिलता है, और उसी वैचित्र्यमें हमें भूत और भविष्यके आदर्शोंके समन्वयकी अनुभूति होती है। वर्तमान युग राजनीतिक दृष्टिसे ही नहीं परन्तु सांस्कृतिक विकासकी वस्तु-स्थितिसे भी भारतके लिए एक क्रान्तिकारी परिवर्तन-काल है। आज हमें हिन्दी साहित्यमें रीति-कालकी याद दिलानेवाली शृंगारिक कविताएँ और बीसवीं सदीके उत्कट स्वरूपको व्यक्त कर देनेवाली क्रान्तिकारी रचनाएँ एक साथ ही देख पड़ती हैं।

और यह सम्मिश्रण व्यक्तित्व और आदर्शोंमें भी पाया जाता है, एवं उन्हींके द्वारा यह कला और कल्पनाके रूपमें प्रस्फुटित होता है। किसी फ्रेंच समालोचकने ठीक ही कहा है—" Art is life seen through a tempera-

ment" और सन्धि-युगका कवि तो अशांति और व्याकुलतासे तड़पता है। प्राचीन और नए आदर्शोंका संघर्ष देखकर वह हक्काबक्का-सा रह जाता है; सामंजस्य-विधानकी लालसा उसमें जाग्रत होती है और अपनी कलाके लिए जाने या अनजाने वह स्वयं ही आदर्श चुन लेता है। साहित्यमें आत्म-केन्द्रता और आत्म-सर्वस्वता स्थापित करनेके लिए वह युग-धर्म जानने और जीवनका लक्ष्य ढूँढ निकालनेके लिए प्रयत्नशील होता है, और उस कविकी कृतियोंमें देश और कालका पूर्ण प्रतिबिम्ब देख पड़ता है। साहित्य और मनुष्यके जीवनमें सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, और कवि तत्कालीन विचार-धाराओं तथा सांस्कृतिक प्रगतियोंको समझने और समझानेका प्रयत्न करता है। और जब कविकी तल्लीनता बढ़ने लगती है तब तो वह प्राचीन विगत-कालीन घटनाओं एवं मृत व्यक्तियोंके चरित्रमें भी जाने-अनजाने समकालीन आदर्शोंका आभास देखने लगता है,— उन्हें भी वर्तमान आदर्शोंके रंगमें रँगने लगता है।

'सिद्धार्थ' महाकाव्यका लेखक भी ऐसे ही परिवर्तन-युगका कवि है। वह आज अपनी कविताओंका 'सुमनांजलि' शीर्षक यह संग्रह लेकर पाठकोंके सम्मुख आ रहा है। बचपनमें अपने ग्रामकी 'केशव-शाला' में बैठकर उसने केशवकी कृतियोंका अध्ययन किया, रामचन्द्रिका पढ़ी, कवि-प्रियाको सराहा और रसिक-प्रियाको प्यार किया। यद्यपि बादमें उसने काव्य-शास्त्रसम्बन्धी संस्कृत ग्रन्थोंका अध्ययन भी किया फिर भी कविकी काव्य-कलापर हमें केशवकी ही अमिट छाप देख पड़ती है। भाव और सरसताके लिए उसको महाकवि देवने अपनी ओर आकृष्ट किया है, और उन्हींके प्रभावसे कवि घनाक्षरीपर इतना मुग्ध हो गया है कि इस संग्रहकी सारी कविताएँ (अंतिम एक कविताको छोड़कर) उसने कवित्तोंमें ही लिखी है। उसने रत्नाकरकी सरस ध्वनि सुनी और उन्हें

"आवत गिरा है रतनाकर निवाजनको
आनँद-तरंग अंग थहरति आवे है।...
लहरति आवे दृग-कोरनि कृपाकी कानि
मंद मुसकानि-घटा घहरति आवे है।"

कहते सुनकर स्वयं गुनगुनाने लगा—

"ध्यान धरते ही शारदाके पद-पंकजका
बंद करते ही लोल लोचन-पटलके।

खुल गया ऐसा समालोक स्वप्नलोक-तुल्य
देख रमणीयता अनूप-नेत्र छलके।" आदि आदि।

परन्तु प्रस्तुत लेखक प्रधानतया खड़ी बोलीका कवि है। उसने अपने विद्यार्थी-जीवनमें मैथिलीशरणजी गुप्त तथा हरिऔधकी कृतियाँ पढ़ी थीं; और उसके कवि-जीवनके बाल्य-कालमें 'सनेहीजी' ने उसको बहुत सहायता दी थी और प्रोत्साहित भी किया था। संक्षेपमें यही है वह मानसिक और सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि जिसके आधारपर अनूपकी प्रतिभा और काव्य-रचना प्रस्फुटित हुई।

अनूपजी मुख्यतः कल्पना-प्रधान कवि हैं और उनकी प्रतिभा, कल्पना एवं गहरी भावुकताका सहारा लेकर, इस संग्रहमें बहुत ही सुन्दर, रंग-बिरंगे, विस्तृत चित्र पाठकोंके सम्मुख समुपस्थित करनेमें समर्थ हुई है। ये चित्र बहुत ही स्पष्ट और उच्च कोटिके हैं। कविने उनको सम्पूर्ण बनाने और उनकी छोटीसे छोटी बातोंको चित्रित करनेमें अपना सारा कला-कौशल व्यय किया है। संसारकी अपूर्णता तथा दैनिक जीवनमें चमत्कारके अभावका कविको प्रतिपदपर भान होता है; और इस अपूर्णताको पूरा करनेके लिए उसने काव्यमें कल्पनाका सहारा लिया है।

अनूपजीकी कल्पनाएँ सुन्दर और सुरुचिपूर्ण हैं; कईमें हमें एक अनूठा चमत्कार देख पड़ता है। कुछ कविताओंमें उन्होंने अपनी कल्पनासे बहुत ही विशाल एवं भव्य स्वरूप पाठकोंके सामने खड़े कर दिये हैं। उनको देखते ही बन आता है। कविने 'विराट-भ्रमण' कवितामें एक ऐसा ही कल्पना-चित्र हमारे सम्मुख चित्रित कर दिया है। महाशक्तिका चार घोड़ोंवाला रथ आसमानसे उतर रहा है। कवि नीचेसे उस रथको देखकर कहता है—

"एक सफ चार जुते आते अति लाघवसे
नालें वह सोलह कलानिधि द्वितीयाके।
उत्थित कशा है पाकशासन-शरासनकी
चारों पुच्छ शम्पा हिम छबि रमणीयाके
वक्र किरणोंकी बनी ललित लगाम लोल" इत्यादि।

चारों घोड़ोंके पाँवोंकी नालें सोलह दूजके चन्द्रमाके समान, उठा हुआ टेढ़ा कोड़ा इन्द्र-धनुषके समान, घोड़ोंकी सफेद पूँछें विद्युल्लताके समान और लगाम टेढ़ी किरणोंकी बनी हुई रज्जुकी-सी देख पड़ती थी।

" मध्यमें पुछारे तारे छोड़ता चला यों रथ
प्रस्तुत अनूप दृश्य ऐसा छबिवान था।
विद्युत थी किन्तु मेघ-मंडल नहीं था वहाँ
तारे थे परन्तु न कहींपै आसमान था। "

अथवा,

" रजनी-प्रकाश-अंक-ओस-बुंद-मध्य क्या ही
रजनी-प्रकाशका प्रकाश बिखरा हुआ।
सिंधुमें असंख्य बारि-बुंद लखे होंगे किन्तु
देखिए समुद्र एक बुंदमें भरा हुआ। "

और ऐसे एक नहीं अनेकों चित्र हमें इस काव्य-संग्रहमें मिलते हैं। प्रायः प्रत्येक कवितामें कहीं न कहीं हमें एकाध कल्पना-चित्र मिले बिना नहीं रहता। 'पुष्प-लेखा' में तो केवल प्राकृतिक पवित्रताका ही अनूठा चित्रण किया है।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि कविमें कल्पनाके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। उसमें कल्पना है, और बहुत अधिक मात्रामें; परन्तु उसके साथ ही उसमें भावुकता भी है। भावुकताके बिना यह सम्भव नहीं कि कोई कवि किसी भी प्रकारकी उच्चकोटिकी रचना कर सके, और उसकी अनेकों ऐसी पंक्तियाँ हैं जो चिरकाल तक अमर रहेंगीं और जिन्हें गुनगुनाकर ही तड़पता हृदय शान्तिकी निःश्वास लेगा। हृदयसे निकली हुई ध्वनि ही हृदयको छूती है। अनूपमें भावुकता है परन्तु एक गहरी भावुकता है, सस्ती भावुकता नहीं। उस भावुकतामें सरलतासे उद्वेलन नहीं हो सकता, परन्तु जब एक बार उसमें तरंगें उठ जाती हैं तो वे एक अनोखा दृश्य, एक अमर चित्र दिखाए बिना शान्त नहीं होतीं।

अतएव जब कविकी भावुकतामें कुछ उद्वेलन होने लगता है तब अपने भावोंके सागरको गहराई तक उद्वेलित करनेके लिए,—अपनी अनुभूतिको पूर्णतया जगानेका वह प्रयत्न करता है और उसके लिए प्रारम्भसे ही वह अनुरूप वातावरण बनाने लगता है। यही कारण है कि प्रायः अनूपकी प्रत्येक कविता प्रकृति या तत्स्थानीय वातावरणके वर्णनसे ही प्रारम्भ होती है। और जबतक कवि इस वर्णनकी समाप्ति करता है उसकी अनुभूति जग उठती है और तब काव्य-धाराका प्रवाह वेगके साथ वह निकलता है। उस काव्य-धाराकी सतहपर कल्पना-चित्र स्थिर हो जाते हैं और एक तरल सरलताका अनुभव होने लगता है। जैसे—

(१) " देख निज जीवन-रहस्य अपनेमें छिपा
हँस पड़ते हो कभी बोल भी दिया करो । "

(२) " आँभल दृगोंसे रतनाकरके आकरकी
गोलकमें डोलते अमोलक रतनसे ।
देखा न किसीने उगे, फूले, मुरझाये कब
बीहड़ विजनके सुवासित सुमन-से । "

जब वर्णन करते समय कविका काव्योद्वेग अपनी चरम सीमापर पहुँचता है तो उसकी गति धारावाहिक रूपसे प्रसन्न और गम्भीर पदावलीके साथ चलती है तथा उसके वर्णनमे स्वाभाविक किन्तु सरल भाव आ जाता है; और तब उसके काव्यमें आलंकारिक गुणसे भी वह ऊँचा चमत्कार आ जाता है जो स्वभावोक्तिका सहचर है । देखिए—

(१) " फिर न मिलेगा कभी खलना न छेड़ो इसे
बालक अभी है कुछ और खेल लेने दो । "

(२) " सोये हुए तुझको जगाना एक वीरता थी
जागे हुए तुझको सुलाना एक काम था । "

कविने प्रकृति एवं वातावरणका वर्णन कर अपनी अनुभूतिको जगानेका सफल प्रयत्न किया है किन्तु वर्णन करते समय भी उसने स्वाभाविकताको नहीं भुलाया। प्रकृतिके पर्यवेक्षणमें सत्यता और कोमलता है, और साथ ही उसमें यह भी शक्ति है कि जो कुछ वह देखता हो उसको एक समृद्ध भाषामें प्रकट कर सके। अनूप-के प्रकृति-वर्णन हिन्दी साहित्यमें अनूठे हैं और उनका स्थान किसी भी अन्य कविसे कम नहीं है । एक उदाहरण लीजिए—

" शाखामृग शाखियोंपै शाखामृगियोंके संग
कुछ सुनते-से कान ऊँचे किये बैठे हैं ।
अमित अभीति-से अभंग-ग्रीव शावकोंको
स-मुद विहंग कोटरोंमें लिये बैठे हैं । "

सुननेके लिए कान ऊँचे कर देना, बन्दरोंका स्वाभाविक धर्म है। सभीत पक्षी अपनी गर्दन टेढ़ी कर लेता है ।

कविकी पैनी दृष्टिके और भी उदाहरण देखिए —

(१) " राई-लोन वारते हैं चंक्रम तितलियोंके,
चक्र चंचरीकोंके निछावर फिराते हैं । "

(२) " मानों जलयानके वितल पृष्ठ-भाग-मध्य
आता चला फेन पीत पिंड-सा उबलता । "

(४) " एक बार और चरमाचला चितापै आज
दग्ध हुआ सूर्य, संध्या सुंदरी सती हुई । "

(५) " तुम थे, प्रसून ! महापथके पथिक तुम्हें
हिमकी चितापै हाय किसने जला दिया ? "

कविता एक भाषा-प्रधान कला है। प्रत्येक कवि यही प्रयत्न करता है कि अपने अनुभवोंको, अपनी इन्द्रियानुभूतियोंको भाषाके साँचेमें ढाल दे। जो कुछ वह स्वयं देखता-सुनता है, अनुभव या कल्पना करता है उसे दूसरोंके लिए सुचारु सुस्पष्ट ढंगसे शब्दोंद्वारा प्रगट करनेकी चेष्टा करता है। इसीमें उसको लोकोत्तर आनन्द आता है जो सब कलाकारोंकी एकमात्र वस्तु होती है। उस कविकी अनुभूतिकी तीव्रता एवं उस अनुभूतिको व्यक्त करनेकी सफलतापर ही उस कविकी महत्ता एवं उसका ठीक स्थान निर्धारित किया जा सकता है। इसके लिए भावुकताके साथ ही साथ भाषाकी भी आवश्यकता है। 'सिद्धार्थ' के महाकविके लिए यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि उसका भाषापर पूर्ण अधिकार है। उसे कहीं भी शब्दोंकी कमीका अनुभव नहीं होता। यही कारण है जो घनाक्षरी छंदमें इतनी सफलता मिली है।

भाषा, छंद और आदर्शकी दृष्टिसे अनूपजीकी गणना हिन्दीके क्लासिक या रीति-प्रधान कवियोंमें होनी चाहिए। उस परंपराके वह अन्तिम महान् कवि हैं। परन्तु उनके विषय और स्थानके प्रदर्शन एवं निरूपणके आधारपर हमें उनकी गणना हिन्दीके रोमेण्टिक कवियोंमें भी करना पड़ती है। रोमेण्टिक कवियोंको दो श्रेणीमें विभक्त कर सकते हैं; प्रथम श्रेणीमें वे कवि आते हैं जिनकी कृतियोंमें कल्पनापूर्ण, अनुभूतिसिक्त रंग-बिरंगे चित्र एवं भावनाओंका ही पूर्ण प्राधान्य रहता है। रहस्यपूर्ण एवं इन्द्रियातीत कल्पना उनको आकृष्ट करती है। विगत भूत एवं आधिभौतिक ही उनकी इस भावनाको संतुष्ट करता है। अँग्रेज़ी भाषामें

कीट्स् और कोलरिज इस प्रकारके कवि हैं। दूसरी श्रेणीके वे रोमेण्टिक कवि होते हैं जिन्हें हम प्रकृतिके कवि भी कह सकते हैं। अपने आसपास रहनेवाले, नित्य प्रतिके जीवनके संसर्गमें आनेवाले साधारण व्यक्तियों और प्राकृतिक दृश्योंको लेकर कविता करनेमें उन्हें आनंद आता है। अँग्रेजी भाषाके कवि वर्डस्वर्थकी गणना इस दूसरी कक्षामें की जाती है। अनूपजीने भी 'मेरा ग्राम' लिखकर इस प्रकारकी कविता करनेका प्रयत्न किया है किन्तु कवि न तो भूतकालीन नरेशों और उनके द्वारा बनाई हुई प्राकार-परिखाओंको भूल सका और न वह वर्तमान राजनीतिक हलचलोंको तथा ग्राम-सुधार-आन्दोलनको ही एक ओर रख सका; ग्रामकी सुन्दरता देखते देखते वह उसकी आर्थिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, तथा नैतिक समस्याओंमें उलझ गया।

अनूपजी कोरे प्रकृतिप्रिय कवि नहीं है। उनमें दोनों श्रेणीके गुण-दोषोंका सम्मिश्रण पाया जाता है। हम पहले ही कह चुके हैं कि कविने प्राकृतिक वर्णनोंका सफलतापूर्वक चित्रण किया है परन्तु यह वर्णन उसके लिए कारण-मात्र है, उसकी अनुभूति जगानेका केवल साधन है; यही कारण है कि अनूपजीको प्रधानतया प्रथम श्रेणीका ही रोमेण्टिक कवि माना जा सकता है। क्योंकि, उनमें प्रकृति-प्रेम गौण रूपसे पाया जाता है और उनकी कल्पना-शक्ति उन्हें निश्चेष्ट रहकर अनुभूतिका आस्वादन नहीं करने देती।

जहाँ जहाँ कविने ऐसी सम्मिश्रित शैलीमें लिखनेका प्रयत्न किया है उसे पूरी सफलता मिली है। उसने प्रतिभाद्वारा उन सब विभिन्न प्रवृत्तियोंको इस प्रकार एकाकार कर दिया है कि वे सब सम्मिलित होकर एक विचित्र एकता, उससे भी विचित्र विभिन्नता उत्पन्न कर देती हैं जिससे उनके समूचे चित्रणमें वह सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है जो उसके विभिन्न अंशोंमें नहीं प्राप्त होता है। 'चित्तौड़-दर्शन' जैसी इनी गिनी कविताएँ ही ऐसी हैं कि उनके टुकड़े मूलसे अलग होकर भी अपनी सुन्दरता नहीं खोते।

कविका यह रोमाण्टिसिज़्म स्वाभाविकतासे दूर नहीं है। अपितु कविने स्वाभाविकता ही कल्पना और भावोद्वेगमें रंग कर एक परिवर्तित स्वरूपमें प्रस्तुत की है। हम पहले ही कह आये हैं कि कविद्वारा अंकित किये गए चित्र स्वाभाविक हैं और उसने उनका अच्छा उपयोग और चित्रण किया। कवि परिस्थितिकी आवश्यकताओंको पहचान कर आगे बढ़ता है और प्राकृतिक वर्णनोंका सहारा

लेकर अस्वाभाविकको भी सजीव और मूर्त्त बना देता है। वह उनको देखता है, अनुभव करता है और पाठकोंको उन्हें दिखाने एवं अनुभव करानेका प्रयत्न करता है।

कविके काव्यमें शक्ति है, स्वाभाविक प्रवाह है, और है वह सौन्दर्य जो कविताके लिए परमावश्यक है। अनूपजीकी प्रतिभा शक्तिशाली और पौरुष-प्रधान है। काव्यशैलीकी पूर्णता सर्वांशतः दो गुणोंसे मानी जाती है, भाषाका लचीलापन और उसकी सहज धारा-प्रावाहिकता। उनकी कविताओंमें हम उपर्युक्त दोनों गुणोंका समावेश पाते हैं। यद्यपि उनकी शब्दावली संस्कृत-प्रधान है और यदा कदा दुरूह भी हो जाती है, फिर भी साधारणतया छन्दका प्रवाह और भाषाकी गरिमा उन शब्दोंको यथास्थान बिठा देती है। कविको भी इसके लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता और न पाठकोंको ही उसकी कुछ अनुभूति होती है।

'शंघाईमें शान्ति' में इन दोनों गुणोंका यथेष्ट सम्मान किया गया है, देखिए—

"उड़े बैंकके वृन्द, उड़े विद्यालय सारे,
उड़े विशाल निकेत, उड़े पुर-ग्राम बिचारे,
उड़े धामके धाम, उड़े जन-प्राण-पखेरू
शोणित ऐसा बहा, बही द्रव होकर गेरू।"

आदि पद उक्त विशेषताओंके उदाहरण हैं। कविताका प्रवाह और उसकी वर्णनशैली इतनी सशक्त है कि पाठकोंको अपने साथ बहा ले जाती है। इसका पूरा पता हमको तब लगता है जब हम एक साँसमें सारी कविता पढ़ जाते हैं और उसको समाप्त करके पुनः एक गहरी साँस लेते हैं।

परन्तु सभी कविताओंके विषयमें ऐसा नहीं कहा जा सकता है। कविमें आलंकारिक-प्रवृत्ति प्रचुरतासे देख पड़ती है। कवि जो कुछ लिखता है उसपर अलंकारोंका आवरण या आलंकारिक चमत्कारका रंग चढ़ा देता है। काव्य-चित्र अलंकारके चौखटेमें कस दिया जाता है। यद्यपि ऐसे स्थल बड़ी प्रचुर संख्यामें नहीं हैं परन्तु जो हैं वे कविकी साहित्यिक विद्वत्ताके उदाहरण कहे जा सकते हैं। उनको पढ़कर हमको अनुभव होने लगता है कि कविको अपने भावों और भाषा-पर पर्याप्त प्रभुत्व प्राप्त है। कविकी कल्पना और उस कल्पनाको आलंकारिक पूर्णता देनेकी शक्ति देखते ही बन आती है। कहीं कहींपर अलंकारोंके प्राधान्यके कारण काव्य-प्रवाह भार-युक्त और केवल प्रयत्नपूर्ण ही नहीं ज्ञात

होता वरन् कविके प्रयत्नका ज्ञान पाठकोंके विचारोंको उसकी सफलतासे दूर फेंक देता है। ऐसे स्थलोंपर आन्तरिक अनुभूतिका अभाव स्पष्ट हो जाता है और हम केवल कविके परिश्रमकी प्रशंसा करने लगते हैं।

इस संग्रहमें ऐसे स्थल भी यत्र तत्र पाये जाते हैं जहाँ अलंकार-प्रधान काव्यके सभी दोष स्पष्ट देख पड़ते हैं। वहाँ वह अलंकार-विधान अलंकार न रहकर कोरा चमत्कार स्वरूप ही हो जाता है। अलंकार-विधान कैसा ही उच्च क्यों न हो यदि वह अनुभूतिविहीन हो, साथ ही अत्यधिक मात्रामें हो तो वह सहृदयोंको सुचारु प्रतीत नहीं होता और ऐसा काव्य द्वितीय श्रेणीका हो जाता है।

इस बातपर कभी दो मत नहीं हो सकते कि कविने अपने काव्यमें सीधी साधी भाषाको छोड़कर आलंकारिक भाषाको ही अपनाया है। इसके कई कारण हो सकते हैं। कविमें कल्पनाका प्राधान्य उसको आलंकारिक भाषाकी ओर बलात् ले जाता है। कल्पनाकी उड़ान उसको अनेकानेक अनूठी उक्तियाँ और उपमाएँ सुझाती है। ऐसे समयमें कल्पनाके सहारे चुने हुए शब्दोंद्वारा एक शब्द-चित्र बनानेमें ही कवि एकाग्रचित्त हो जाता है और इससे उसकी अनुभूति गौणता प्राप्त कर लेती है। किन्तु जहाँ कविकी कल्पना अनुभूतिसे प्राणित होकर चली है वहाँ उसकी छवि देखते ही बन आती है, वहाँ अलंकार काव्यकी सुन्दरता बढ़ा देते हैं और कवि उन अलंकारोंमें ही आवश्यक रंग-रूप प्राप्त करता है।

(१) " किन्तु काम-करि-केसरीके यही काल
इन्हें काम-करि-केसरी महेश क्यों न प्यारे हों। "

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास, अथवा यों कहें अनुप्रास और परम्परित रूपकके संयोगने भर्तृहरिके एक प्रसिद्ध नामको अधिक चमत्कृत कर दिया है।

(२) " मानों चारों ओर मन्त्र-लकुटी घुमाती हुई
कोई आभिचारिणी धराको सुप्त करती। "

उत्प्रेक्षा बिलकुल नई है। हिन्दी या संस्कृत कवियोंने सन्ध्याका ऐसा चित्र अंकित नहीं किया।

(३) " सार-भरी शोभा थी बहार-भरी वसुधामें
भार-भरी बाग अन्धकार-भरी यामिनी। "

अनुप्रासकी सहायतासे नैसर्गिक चित्र एक क्रमसे अंकित किया गया है।

(४) " चंचरीक-वृन्दमें गजेन्द्र ही समाया, या कि
गज-गंडमें ही भृंग-मण्डली समाई है । "

'संदेह' की सहायतासे 'मीलित' अलंकारको कितनी सुंदरतासे प्रौढ़ता प्रदान की गई है ।

(५) " तो फिर कचोंकी, लोचनोंकी, मंजु आननकी
कटिकी, करोंकी, जघनोंकी होती समता । "

'यथासंख्य' अलंकारका यह एक सुन्दर उदाहरण है । छः वस्तुओंका यथासंख्य व्यापार एक साथ संगठित किया गया है । पाठकगण इसी प्रकारके बहुत-से स्थल इस संग्रहमें देखेंगे ।

अनूपजीकी कवितामें कुछ ऐसी भी उपमाएँ मिलती हैं जो हिन्दी-संसारके लिए सर्वथा नवीन युक्तियाँ कही जा सकती हैं । उदाहरणार्थ—

(१) " जैसे रजनीके गतिशील बननेसे कहीं
गिरते गगनसे सितारे टूट टूट कर । "

कितनी अच्छी सांगोपांग और नवीन उपमा है ।

(२) नाव जब पानीमें चलती है तो उसके पीछे पतवारके पास एक भौंर-सा उठने लगता है । उस स्थानपर पानीका तल भौंरके कारण कुछ नीचा हो जाता है और उसमें कभी कभी फेनका वृत्त चक्कर खाने लगता है—

" जैसे जलयानके वितल पृष्ठ-भाग-मध्य
आता चला फेन पीत पिंड-सा उबलता । "

एक नवीन कल्पना है। ऐसी उपमाएँ अपनी नवीनताके कारण हिन्दी साहित्यमें कम दृष्टिगोचर होती हैं ।

अनूपजी पूर्णतया इस युगके प्रतिनिधि कवि हैं । इस आलंकारिक भाषा और कल्पना-चित्रोंके बाहुल्यमें वे अपने देशकी समकालीन राजनीतिक परिस्थितियोंको भूलते नहीं हैं । सांस्कृतिक संघर्षके साथ ही साथ राजनीतिक कशमकशका भी पूरा प्रतिबिम्ब उनकी कवितामें देखनेको मिलता है । अपने कविजीवनके प्रारम्भमें ही उन्होंने सन् १९२१ के सनसनीपूर्ण और उत्तेजक दिन देखे हैं और उन्हीं दिनोंकी प्रेरणासे अभिभूत होकर उन्होंने उन दिनों इतनी ओजस्वी राष्ट्रीय कविताएँ लिखीं कि वे 'वर्तमान भूषण' कहलाये ।

परन्तु आजकल कविने प्रचारके लिए छिछली तात्कालिक और उत्तेजनापूर्ण कृतियोंसे मुँह मोड़ लिया है, किन्तु प्रारम्भिक युगकी अदम्य अनुभूति उसपर गहरा रंग छोड़ गई है और कवि अपनी ओजपूर्ण कल्पनामय शब्दावलीद्वारा स्वतंत्रताका स्वागत करने बढ़ा है। महात्मा गाँधीका 'दंडी-प्रयाण' अब इतिहासकी एक घटना हो गई है। इस अमर व्यक्तिकी जीवनीका एक पृष्ठ अपनी कवितामें वर्णित कर कविने अपनी वाणीको पवित्र किया है। अहिंसाके उस अवतारके आदर्शोंकी व्याख्या करते करते कवि चौंक पड़ता है और सुदूर पूर्वमें उसी अहिंसावादके सर्वप्रथम आचार्य भगवान् बुद्धके अनुयायियोंकी हिंसा-लीलाका दृश्य उसकी आँखोंके सामने नाचने लगता है। अंतमें जब पाठक शंघाईकी उस मृत्यु-पूर्ण बीभत्स शान्तिकी ओर अन्तिम दृष्टि डालकर एक गहरा निःश्वास लेता है और इस 'सुमनांजलि' को एक ओर रख देता है तब भी उसकी आँखोंके सामने नाशका वह प्रचण्ड स्वरूप बड़ी देरतक घूमता रहता है।

अब अधिक नहीं। हम भी अब पाठकोंकी शान्तिको अधिक भंग करना नहीं चाहते। अनूपजीकी मानसिक पृष्ठ-भूमि, उनकी काव्य-धारा एवं कल्पना-प्रवाहकी प्रगतिका कुछ निर्देश करना मात्र हमारा उद्देश्य था और हमने जितने पद उदा-हरणार्थ दिये हैं उनको ही हम ग्रन्थमें सर्वश्रेष्ठ मानते हैं यह बात नहीं है। वे तो इस पुस्तकमें प्रकाशित कई सुंदर उक्तियोंमेंसे कुछ हैं। अनूपजीके काव्यके विशेष गुण-दोषोंकी विवेचनाका कार्य हम साहित्यिक समालोचकों और सहृदय पाठकोंपर ही छोड़ते हैं। व्यवहारमें अपनी सारी ऊपरी नम्रताको प्रदर्शित करते हुए भी प्रत्येक कवि अपने हृदयमें यही विश्वास रखता है कि उसकी कृतियाँ विश्व-काव्यमें यदि न भी स्थान पा सकेंगी तो कमसे कम अमर अवश्य होवेंगी। यदि अनूपजीके हृदयमें ऐसा विश्वास हो तो स्वाभाविक ही होगा, परन्तु यह तो समय ही बता सकेगा कि उनकी कितनी और कौन-सी कृतियाँ स्थायी साहित्यकी अमर निधि बनेंगी।

रघुवीर-निवास, सीतामऊ
१८-९-१९३९

रघुवीरसिंह
रघुनाथसिंह

परिचय

आजकल हिन्दी कविताका प्रवाह कई धाराओंमें जारी है। पुरानी रीति-कालकी धाराका वेग इस समय कम है फिर भी प्रवाहकी गति सर्वथा अवरुद्ध नहीं हुई है। रीति-कालकी कविता साहित्य-शास्त्रमें निर्धारित नियमोंका पालन करती हुई चलती है। नियमोंकी पूजा करना तत्कालीन साहित्य-संसारमें एक प्रकारका साहित्यिक सदाचार समझा जाता था। इस सदाचारकी अवहेलना साहित्यिक निन्दाका कारण बनती थी। पर, धीरे धीरे नियम-पूजाका प्रभाव कम पड़ता गया। इधर कुछ समयसे तो इसके विरुद्ध भीषण प्रतिक्रियाका प्रादुर्भाव हुआ है और साहित्यिकोंका एक दल तो रीतिकालकी इन साहित्यिक रस्मोंका घोर विरोधी है। नियम-पूजाको वह घृणाकी दृष्टिसे देखने लगा है।

आजसे कई सौ बरस पहले हिन्दी-कविता व्यापक साहित्यिक व्रज-भाषामें होने लगी थी। यह क्रम बराबर जोर पकड़ता गया था। पर इधर वर्तमान पीढ़ीमें कविता भी उसी भाषामें होने लगी जिसमें गद्य लिखा जाता था। गद्यमें प्रयुक्त होने-वाली भाषा 'खड़ी बोली' के नामसे प्रसिद्ध है। खड़ी बोलीके अनेक कवियोंने हिन्दी कविताकी पुरानी नियम-पूजा-परिपाटीकी सर्वथा उपेक्षा की है, परंतु दो-चार ऐसे भी हैं जो साहित्य-शास्त्रका शासन स्वेच्छापूर्वक मानते हैं यद्यपि जिन विचारोंको उन्होंने अपना रखा है वे वर्तमान रुचि, प्रगति और वातावरणके अनुकूल हैं।

श्रीयुत अनूपशर्माजीकी हिन्दी साहित्य-संसारमें अच्छी ख्याति है। उनकी रचनाओंकी लोकप्रियता निर्विवाद है। हिन्दीके वर्तमान कवियोंकी पंक्तिमें उनका आदरणीय स्थान है। उनकी कविताकी यह प्रतिष्ठा संयोग अथवा प्रचारके बलपर नहीं हुई है, कारणवश अयोग्यताको योग्यताका रूप नहीं मिला है, वरन् यथार्थ गुणोंके आदरमें ही अनूपजीकी रचनाओंकी सफलताका रहस्य वर्तमान है। अनूपजीकी कविता खड़ी बोलीमें है, वर्तमान वातावरणके अनुकूल है, तथैव पुराने काव्यशास्त्रके शासनके प्रतिकूल भी नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक एक संग्रह-ग्रथ है। इसमें समय-समयपर लिखी जानेवाली अनूपजीकी सोलह कविताओंका संग्रह है। एक प्रकीर्ण पद्यका परिच्छेद भी सम्मिलित है। शारदावतरणको छोड़कर और सभी कविताएँ काफ़ी बड़ी हैं। उनका आकार न तो इतना विस्तृत है कि पढ़ते पढ़ते चित्त ऊब जाय और न ऐसा छोटा कि वर्ण्य विषयका वर्णन अतृप्तिकर हो। नैसर्गिक सुघराईसे लेकर शृंगार-संबंधी वर्णनों तकका समावेश अनूपजीने वर्तमान रुचिको ध्यानमें रखते हुए सुन्दरता और सफलताके साथ किया है। उनकी रचनाओंमें भिन्न भिन्न रसोंका सुस्वादु परिपाक है। वीररसका सर्वस्व ओज अनूपजीकी भाषामें .खूब फबता है। अतीत स्मृतियोंका चित्रण अनूपजीने बड़ा सुंदर किया है।

इस छोटेसे परिचयमें किसी कविता-विशेषकी समीक्षा कर सकना संभव नहीं है, इसलिए उनकी समग्र रचनाओंके पढ़नेके बाद जो विशेषताएँ ध्यान आकृष्ट करती हैं, उन्हींका कुछ अस्पष्ट सा उल्लेख यहाँपर किया जाता है।

संस्कृतके पुराने कवियोंकी वर्णन-शैलीको श्रीयुत पं० अयोध्यासिंहजी हरिऔधने 'प्रिय-प्रवास' में सफलतापूर्वक अपनाया है। अनूपजीपर 'हरिऔध'की शैलीका स्पष्ट प्रभाव है। वे भी वर्णन-प्रधान कवि हैं। उनकी भाषामें सुंदर प्रवाह होते हुए भी कहीं कहीं भाषाकी गति अत्यन्त प्रखर है। ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं, फिर भी जहाँ कहीं ऐसे प्रखर प्रवाहके आवर्त पड़ गए हैं वहाँपर शब्दोंका घटाटोप मस्तिष्कपर कुछ अधिक भार डालता है। इन आवर्तोंके अतिरिक्त समग्र प्रवाह बहुत सुंदर, शीतल और सुखद है।

अनूपजी पुराने काव्य-शास्त्रके शासनको माननेवाले कवि हैं। उनकी रचनाओंमें पूर्ववर्ती कवियोंकी प्रचलित रूढ़ियोंका बहिष्कार नहीं है। उनकी कृतिमें यह उद्योग नहीं दिखलाई पड़ता है कि पुराने कवियोंके भावोंकी

छाया न पड़न पावे। अनूपजीने निस्संकोच पुराने भावोंसे भी लाभ उठाया है। काव्य-शास्त्रकी रीतियोंका अनूप-काव्यमें आदर है और इसीलिए पुराने और नए दोनों प्रकारके कविता-प्रेमियोंको अनूप-रचनाएँ संतोष प्रदान करती हैं। अनूपजीकी कविता प्रायः एकरस है। उनकी प्रत्येक उक्तिमें कुछ न कुछ चमत्कारकी बात मौजूद पाई जाती है। इस संग्रहमें प्राप्त उनके कुछ छंद ऐसे अच्छे बन पड़े हैं कि उनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। अनूपजीकी रचनामें अभिनव विचारोंका भी समावेश है, फिर भी, प्राचीन कविता-परंपराकी उन्होंने कौशलके साथ रक्षा की है। नूतन और पुरातनका अनूपजीकी कवितामें अनूप समन्वय है। चोज और ऊँची उड़ान कविकी प्रतिभाकी विशालताके परिचायक हैं। अनूपजीकी अधिकांश कविता अभिधा-प्रधान है और आवश्यक अलंकारोंके धारण करनेमें उसको कुछ भी झिझक नहीं है।

इस सुंदर संग्रहको पाकर हिंदी-संसार अनूपजीके और अधिक निकट पहुँच जायगा, उनके प्रति स्नेह और आदरकी परिधि और भी व्यापिनी और विशाल हो जायगी।—ऐसा हमारा विश्वास है।

इस परिचयके लेखक और प्रस्तुत संग्रहके रचयिता दोनों एक ही प्रान्तके निवासी हैं। दोनोंमें हिन्दी प्रेमके नाते बहुत दिनोंसे सौहार्द भाव है। ऐसी दशामें एक दूसरेकी कृतिको जिस स्नेह और ममतासे देखेगा वह नितांत स्वाभाविक है। स्नेह और ममता पक्षपातके प्रधान आकर्षण हैं। पक्षपातका प्रादुर्भाव न्यायके सम्मानमें न्यूनता उत्पन्न करता है। इसी कारण अब यह लेखक अनूपजीकी कविताकी अधिक स्तुति नहीं करना चाहता। उसका अन्तिम निवेदन यही है कि अनूपजीकी कविता अत्यन्त मनोहारिणी, सरस, सालंकार, भावमयी एवं ओजमयी है। अनूपजीका आदर करके हिन्दी-संसार गुणग्राहकताका परिचय दे रहा है। ईश्वर करे, अनूपजीका काव्य-यशो-सौरभ और भी दूर दूर तक फैले। तथास्तु

गँधौली
देवशयनी
१९९६ वि०

—कृष्णविहारी मिश्र

कविताओंका स्पष्टीकरण

१ शारदावतरण (पौष, १९८६ विक्रम)

फैज़ाबाद कवि-सम्मेलनके समय उपस्थित हुए कवियोंको स्व० रत्नाकरजीने अपने निवास-स्थान अयोध्यामें आमंत्रित किया था। उस कवि-गोष्ठीमें रत्नाकरजीने जो छंद सुनाए उसमें उनका वह प्रसिद्ध छंद भी था जो " आवत गिरा है रतनाकरै निवाजनकौं, आनँद-तरँग अँग थहरति आवै है, " से प्रारंभ होता है। उस छन्दने कविके ऊपर इतना प्रभाव डाला कि वहाँसे बिसवाँको लौटते ही उसने यह कविता लिख डाली। इसमें केवल ' आवत गिरा है की व्याख्या की गई है। दूसरी बार लखनऊमें रत्नाकरजीसे मिलनेपर कविने जब यह कविता सुनाई तो नव-युवक कवियोंको प्रोत्साहन देनेमें सिद्ध-हस्त होनेके कारण उन्होंने कविताकी प्रशंसा करते हुए कहा, " भाई, चाहे मेरे पास न आई हो लेकिन तुम्हारे पास तो अवश्य आई। मैं चाहता हूँ, हिन्दी-संसारमें तुम अपने अंतिम छंदको सार्थक कर सको। "

२ चित्तौड़-दर्शन (ज्येष्ठ १९८७ वि०)

चितौड़गढ़ ऐतिहासिकोंका एक तीर्थ-स्थान है। जिस गढ़में तीन-तीन बार जौहरकी वेदियाँ रची गई हों, जिसका इतिहास इतना रोमांचकारी हो, जिसपर

'जायसी' से लेकर आज तकके हिन्दी-कवियोंने अपनी लेखनी पवित्र की हो, उसके महत्त्वका क्या कहना ! प्रस्तुत कवितामें कवि एक प्रदर्शककी हैसियतसे अपने किसी मित्रको चित्तौड़का दर्शन कराता है और उसे क्रमशः गढ़के बाहरसे पद्मिनीके महल तक ले जाता है । वहाँसे लौटाकर महाराना कुंभाके स्तूपपर चढ़-कर भूत वैभवकी स्मृतिमें दीर्घ निःश्वास छोड़ता है और फिर सारे दृश्यपर सन्ध्याकी यवनिका गिर पड़ती है । कविताके गर्भांगमें जौहरका दृश्य भी खींचा गया है जहाँ कविताका प्रवाह अपनी चरम सीमापर पहुँचता है ।

३ हरिश्चन्द्र-घाट (फाल्गुन १९८७)

कवि जब काशीमें रहता था तब एक बार गंगामें बाढ़ आई थी। उसकी नाव रातको साढ़े आठ बजे रामनगरकी ओरसे आकर काशी-तटपर लगी । वह दृश्य कविके नेत्रोंमें तब तक नाचता ही रहा जब तक कि वह इस कविताके रूपमें मूर्त्त न हो पाया । संध्याके समय गंगाका तट, श्मशानकी भयंकरता कविके हृदयमें विविध भाव—जीवनसे मरण तकके—उत्पन्न करती है । यद्यपि यह सत्य है कि साहित्यिक दृष्टिसे 'चिता'की अपेक्षा 'कब्र' पर अधिक मनोभाव उठ सकते हैं परन्तु कविने अपनी संस्कृति-रक्षा करते हुए श्मशान और चितापर भी कुछ कहनेका साहस किया है । काशीकी श्मशान-भूमिका कोई भी चित्र शैव्या-हरिश्चन्द्र-परिच्छेदके बिना अपूर्ण ही है। अतः उसका भी निर्देश करके कवि जीवन-मरणके दुःखद प्रसंगसे विश्राम लेकर अपने प्रातःकार्यमें प्रवृत्त हो जाता है ।

४ ताजमहल (अश्विन १९८८ वि०)

ताज-महल संसार-भरमें प्रसिद्ध होनेके कारण बड़े-बड़े कवियोंकी लेखनीका विषय रहा है । विश्वकवि रवीन्द्रने भी इस विषयको अपनाया है । कविने शरत्पूर्णिमाकी मध्यरात्रिको इस विशाल मृत्यु-भवनको देखा । मध्य-रात्रिका वर्णन प्रारंभ करके कवि इस भवनको, तथा इसमें सोती हुई उस परम सुंदरी रमणीको अपनी काव्याञ्जलि प्रदान करके इसके सामूहिक सौन्दर्य्यपर दृष्टि पात करता है । अन्तमें वह जिस सिद्धान्तपर पहुँचता है वह एक ही छंदमें गागरमें सागरकी तरह भर दिया गया है । श्रृंगार-रसके आलंबनपर यह इमारत बनी थी और उसीके आधारपर प्रस्तुत कविताका प्रासाद खड़ा किया गया है । यहाँ संयोग और वियोगका दृश्य ताज-महलके आकारमें एक ही स्थानपर स्थित हो गया है ।

५ भर्तृहरिकी गुफा (कार्तिक १९८९ वि०)

उज्जैनके पास इस नामकी एक गुफा है। यद्यपि इस समय उसका विगत स्वरूप कुछ भी नहीं रह गया है और उसकी दर्शनीयता भी नष्ट हो गई है परन्तु कविने उस समयकी गुफाका वर्णन किया है जिस समय स्वयं भर्तृहरि यहाँपर योग-साधना करते रहे होंगे। प्रारंभमें उनके आश्रमका वर्णन करके वह उनकी स्थिति तथा उनके उपदेशोंको अंकित करता है। साधारणतया बहुतसे भाव उन्हींकी शतक-त्रयीमेंसे लिये गए हैं लेकिन कविने उनको अपनी शब्दावलीमें योगिराजके जीवनपर ही घटा दिया है। यही इस कविताकी विशेषता है। किसी कविकी कविता उसके आत्म-स्वरूप ही हुआ करती है। इस सिद्धान्तका व्यावहारिक प्रतिपादन ही इस काव्यकी आत्मा है।

६ मार्तण्ड-मण्डल (वैशाख १९९० वि०)

शरत्कालीन प्रभातका कविने सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण करके इस कविताका श्रीगणेश किया था। प्रभात-वर्णनको अधिक चमत्कार-पूर्ण बनानेके लिए इसमें उसने अलंकारोंका मुक्तहस्त प्रयोग किया है। सूर्य्योदयके पहले या पीछे अथवा सूर्योदयके समय पूर्वाकाशकी क्या अवस्था होती है, सूर्य्य किस प्रकार अंधकारपर उत्तरोत्तर विजय पाता है, आदि बातें यद्यपि सब लोगोंके लिए प्रति दिन देखते रहनेके कारण परिचित ही हैं तथापि, कविने अपनी प्रतिभाके सहारे जो दृश्य उपस्थित किया है, पाठकगण उसकी सूक्ष्मताका अनुभव करेंगे। हरिद्वारका प्रभातकालीन दृश्य कविके मस्तिष्कपर एक अमिट छाप छोड़ गया है।

७ गजेन्द्र-मोक्ष (भाद्र १९९०)

इस विषयपर हिन्दी-साहित्यमें मतिराम, पद्माकर, रत्नाकर आदिने अनेक फुटकर छंद लिखे हैं। कविने यहाँ इस प्रसंगका धारावाहिक वर्णन किया है। श्रीमद्भागवतमें यह कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। रूपकमें यह एक गृहस्थकी मृत्युका दृश्य दिखाया गया है। जिन लोगोंने जंगली हाथियोंका जल-विहार देखा होगा वे इस कविताके वर्णनको भली भाँति समझ सकते हैं। जंगली हाथियोंका जल-विहार अत्यन्त मनोरंजक होता है। उसको देखकर कविको गजेन्द्रकी कथाका ध्यान आता है और उसका वह सांगोपांग वर्णन करता है।

८ मेरा ग्राम (फाल्गुन १९९१)

कविने यह पचीसी अपने गाँव (नबीनगर जिला सीतापुर) पर लिखी है। अवध प्रान्तके प्राकृतिक दृश्यसे प्रारंभ करके गाँवकी समृद्धिका चित्र अंकित करके, कवि उसके विगत वैभवपर बड़ी करुणापूर्ण दृष्टि डालता है। अँग्रेज़ी राज्यके ज़ोर पकड़नेसे किस प्रकार भारतके गाँव बरबाद हुए, यह एक आँखोंदेखी बात है। कविने अपने बाल्य-कालके दृश्योंका भी चित्रण किया है और ग्रामीण सभ्यताका भी। ऐसी परिस्थितियाँ न्यूनाधिक रूपसे हमारे देहातमें सर्वत्र उपस्थित हैं जिनके कारण ग्रामोंकी मध्यकालीन शोभा नष्ट हो गई है। अन्तमें कवि अपनी व्यक्ति गत इच्छाओं और आशाओंके साथ इस करुण परिच्छेदको समाप्त कर देता है।

९ स्वतंत्रते ! स्वागत (अगहन, १९९१)

इस कवितामें कविने कल्पनासे विशेष काम लिया है। स्वदेशमें स्वतंत्रताका पदार्पण हो रहा है; यह मान कर वह उसका स्वागत करनेको उद्यत होता है। स्वतंत्रताका आगमन और उसके आगमनसे भूमिपर कैसी क्रान्ति मच जाती है, कैसी उथल-पुथल होने लगती है, आदिका वर्णन करके जब कवि उसको अपने सम्मुख स्वागतार्थ आवाहन करता है तो वह देवी प्रसन्न होकर सारे देशमें सुख-समृद्धिका केवल दृष्टि-पातसे ही वितरण करने लगती है। उसको संबोधित करके कवि निवेदन करता है कि उसके न होनेसे देशकी क्या दशा थी और अब उसके अवतरित हो जाने पर क्या परिवर्तन हो गया है। अन्तमें स्वतंत्रताकी स्तुति करके भारतमें निवास करनेकी प्रार्थनाके साथ कविता समाप्त होती है।

१० पुष्पलेखा (श्रावण १९९२)

इस कविताका आधार वसन्त-सुषमा है। इस प्राकृतिक समृद्धिमें सर्वश्रेष्ठ ऋतुकी आत्मा मूर्त्त-रूप धारण करती है। वह एक ‘ वनदेवी ’के रूपमें अंकित की गई है। उसका जन्म किन प्राकृतिक परिस्थितियोंमें हुआ, वह किस तरह बढ़कर अपने यौवनको प्राप्त हुई और पुनः वह किस प्रकार उसी समृद्धिमें अंतर्हित हो गई, यही इस कविताकी भूमि है। प्राकृतिक शोभाका अतिशय और नैसर्गिक अतिरेक,दोनों ही समान रूपसे काव्य-प्रवाहके अन्तर्गत निहित हैं। सारी

कथा एक कल्पना मात्र है जिसकी स्थिति कवि-मस्तिष्कसे पृथक् कहीं नहीं है। प्रकृतिकी प्रियता ही वनदेवी बनकर निसर्ग-सदनमें संचरण कर रही है।

११ वंशी-विजय (माघ १९९२)

यह कविता ' छायावाद 'का एक उदाहरण कही जा सकती है। ब्रह्माण्डमें निरंतर ही एक प्रकारका शब्द हो रहा है। आस्तिकोंका कथन है कि वही शब्द सार्थक होकर वेदमें अवतरित हुआ है। इस शब्दको अँग्रेज़ीमें Music of the Spheres कहते हैं। कविने उस शब्दको वंशी-ध्वनि मान लिया है। यह अनाहत नाद उसको अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। ' श्रीकृष्णकी वंशी 'का बहुत कुछ साम्य लेकर कविने अपने हृद्गत भाव प्रकाशित किये हैं। इसी लिए वह उस वंशीको संबोधित करके, अपने भाव नाना प्रकारसे प्रकट करके, जो कुछ कह रहा है वह शब्दोंके अंतरंगमें निहित है।

१२ अमृत और विष (आश्विन १९९३ वि०)

संसारमें एक ओर जीवन और दूसरी ओर मरण अपना अपना कार्य एक-साथ कर रहे हैं। H. G. Wells के ' संसारका इतिहास 'को पढ़कर कविको यह कविता लिखनेकी स्फूर्ति हुई। प्रागैतिहासिक युगकी सामग्री और पुरातत्व-विभागके अन्वेषणोंके आधारपर इस कविताका विषय खड़ा किया गया है। जिन लोगोंने उक्त पुस्तक नहीं पढ़ी, या जिनको पुरातत्त्वकी बातोंमें रुचि नहीं है, उनके लिए यह कविता कहीं कहीं अस्पष्ट हो गई है। फिर भी थोड़ेसे विस्तारमें संसारके विगत इतिहासका बहुत-कुछ सार भर दिया गया है।

१३ विराट-भ्रमण (चैत्र १९९४)

इस कवितामें कविने अपनी कल्पनासे विश्व-रूपका दर्शन किया है। आजतक प्राप्त खगोल-विज्ञानकी सामग्रीका अवलंबन लेकर कविने भूगोलके ऊपरके विस्तारका वर्णन किया है। वर्णन सर्वत्र कल्पनापर समाधारित है। जगदम्बिकाके रथका आकाशसे उतरना और उसी रथका पुनः आकाश-मार्गसे चलना एक अद्भुत दृश्य है। कविने इस कवितामें अपनी योग्यतानुसार अद्भुतका चित्रण किया है। आकाशका दृश्य बड़े विस्तारसे वर्णित किया गया है जिसका कुछ कुछ आभास आजकल वायुयानोंके यात्रियोंको अवश्य होता है।

१४ दंडी-प्रयाण (कार्तिक १९९४ वि०)

महात्मा गाँधीकी दंडी-यात्रा एक ऐतिहासिक घटना है। इतने बड़े महापुरुष-का इतना बड़ा कार्य एक छोटी कवितामें नहीं आसकता था इसी लिए कविने यह कविता अन्य सभी कविताओंसे अधिक विस्तृत लिखी है। इस कविताका पूर्व-रूप, उसी समय जब गाँधीजीने प्रयाण किया था, लिखा गया था और प्रायः सभी प्रसिद्ध पत्रोंमें उद्धृत हुआ था। प्रस्तुत काव्य उसका विस्तार-मात्र है। कविने सत्याग्रह-संग्रामका विस्तारके साथ उपोद्घात किया है। सारी कविता यथार्थ भूमिपर अवलंबित है और कल्पनासे घटना-चक्र संचालित कर दिया गया है।

१५ प्रकीर्ण-पद्य (१९७८ से १९९६ तक)

ये पद्य समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशनार्थ लिखे गये थे जिनका संग्रह इस परिच्छेदमें कर दिया गया है।

१६ शंघाईमें शान्ति (आषाढ़ १९९५ वि०)

चीन-जापान-युद्धके प्रारंभिक दिनोंमें जापानने बम-वर्षा करके शंघाईको ध्वस्त कर दिया था। इस कवितामें आधुनिक रणक्षेत्रका वर्णन किया गया है। साथ ही साथ उन समस्याओंपर भी प्रकाश डाला है जो ऐसे युद्धोंके परिणाम-स्वरूप उपस्थित हो जाती हैं। अन्तमें भविष्यवाणीके साथ यह कविता समाप्त होती है।

अनुक्रमणिका

			पृष्ठांक
१	शारदावतरण	....	१
२	चित्तौड़-दर्शन	....	६
३	हरिश्चन्द्र-घाट	....	१८
४	ताज-महल	....	३२
५	भर्तृहरिकी गुफा	....	४२
६	मार्तण्ड-मंडल	....	५३
७	गजेन्द्र-मोक्ष	....	६४
८	मेरा ग्राम	...	७५
९	स्वतंत्रते, स्वागत !	....	८८
१०	पुष्पलेखा	....	९९
११	जीवन-मरण	....	११०
१२	वंशी-विजय	....	१२१
१३	विराट-भ्रमण	....	१३२
१४	दण्डी-प्रयाण	....	१४४
१५	प्रकीर्ण पद्य	....	१६३
१६	शंघाईमें शान्ति	....	१७९

सुमनाञ्जलि

शारदावतरण

ध्यान धरते ही शारदाके पद-पंकजका,
बन्द करते ही लोल लोचन-पटलके।
खुल गया एक समालोक स्वप्न-लोक-तुल्य,
देख रमणीयता अनूप-नेत्र छलके—
सेर[1] था, समीर था, पिकी[2] थी, पुष्प-वाटिका थी,
भूपै गिरते थे मकरन्द-बुन्द ढलके।
ऐसी दिव्य वेलाको विलोक अन्तरिक्ष[3]पर,
धाई मेरी दृष्टि भूमि-तलसे उछलके। १

व्यक्त हुआ पहले अनूप ज्योति-बिन्दु एक,
जो कि क्षणमें ही भौमै[4]के समान हो गया।

---

१ तालाब। २ कोयल। ३ आकाश। ४ भूमिका पुत्र, मगल ग्रह।

ज्यों ही हुआ नभमें समायत[1] विकास वह,
मंजुल मरीचि-जाल वर्धमान हो गया।
ऐसी द्रुततर अधिकाधिक कलाएँ बढ़ीं,
पलमें प्रकाश-पुंज कान्तिवान हो गया।
देखते ही देखते रहस्य बढ़ता ही गया,
देखते ही आसमान भासमान[2] हो गया। २

वारिद[3] घिरे न थे अनूप व्योम-मंडलमें,
चारु चंचलाकी कल्पना भी वृथा होती थी।
मान यदि लेते वडवानल गगनमें तो
प्रकृति-विरुद्ध उलटी ही प्रथा होती थी।
कहते उसे जो रवि, उसकी न वैसी छवि,
चन्द्र स-कलंक, कहनेमें व्यथा होती थी।
ज्यों ज्यों ज्योति बढ़ती समीप आ रही थी मम
मानसकी त्यों त्यों अकथा ही कथा होती थी। ३

व्यास फैलने लगा प्रभाका अभ्र[4]-खंड-तुल्य
जिसकी चमक प्रतिबिम्बित-सी होती थी।
अथवा धराको अवदात[5] करनेके लिए
व्योममें रजत-राशि[6] इंगित-सी होती थी।
किंवा था किसीकी कल कीर्तिका कलाप वह,
या कि जगतीकी ज्योति संचित-सी होती थी।

---

१ विस्तृत। २ प्रकाशित। ३-४ बादल। ५ सफेद, सुन्दर। ६ चाँदीका ढेर।

देखके अनूप द्युति डोल उठता था मन,
        सोचके रहस्य बुद्धि चिन्तित-सी होती थी । ४

देख पड़ा धावमान धरणी-धरेन्द्र[2]सम
        भाग जो रहा हो मेघ[3]-वाहनके भयसे ।
ज्ञात हुआ आता सदादान[4]के समान दिव्य
        निकल पड़ा जो पाक-शासन-निलय[5]से ।
या कि उखड़ा हो हर[6]-गिरि अन्तरिक्ष-मध्य
        श्वेततर हर[7]से, सुधा[8]से, हरि-हय[9]से ।
चारों ओर जगर-मगर जगती थी ज्योति
        चंचल सुचारु चंद्रिकाके अभिनयसे । ५

देख पड़ी क्षणमें सवारी हंसवाहिनीकी
        आसन लगाये मानसालय[10]के परपै ।
युगल करोंमें शुभ्र कच्छपी[11] विराजमान
        एक हाथ माला, वेद-ग्रन्थ एक करपै ।
चालित समीरसे दुकूलकी सुगन्ध छाई
        धाई जय-हेतु मानो चंदन-अगरपै ।
सकल रसा[12]को रस-राशिमें डुबोती हुई
        आई जल-देवता सवार निर्झर[13]पै । ६

---

१ दौड़ता हुआ । २ पर्वत । ३ इन्द्र । ४ ऐरावत हाथी । ५ इन्द्रके घरसे । ६ कैलास । ७ महादेव । ८ चूना या अमृत । ९ उच्चैःश्रवा, इन्द्रका घोड़ा । १० हंस । ११ सरस्वतीकी वीणा । १२ पृथ्वी । १३ (शुद्ध) निर्झर, झरना

वीणाके अपार गौर[1] तारोंकी कतार मंजु
इन्द्रनील पाटीपै अनूप अति आला थी।
विविध रँगोंके रमणीय रतनोंसे रची
श्रेणी तार-यष्टियोंकी[2] करती उजाला थी।
जगमग-ज्वलित जवाहिर-जटित-ज्योति
दोनों तुम्बियोंसे शोभा बीनकी दुबाला थी।
अंग अंग सुन्दर सुभग कच्छपीके लसे,
संग संग मुदित मिलिन्दमयी माला थी। ७

चारों ओर वीणापै करोंका प्रतिबिम्ब देख
नील जल-राशिपै सरोज-भ्रान्ति होती थी।
युगल कपोलोंकी तटीपै केश-पुंज मंजु
मानके सेवार कल्पनाकी श्रान्ति होती थी।
आनन प्रसन्न अरविन्द-चन्द्र-सा जो कहें
काव्यके विधानमें विशेष क्रान्ति होती थी।
यों तो देख मेरा मनोवेग बढ़ता था, किन्तु
अन्तर निरन्तर महान शान्ति होती थी। ८

ललित ललाट जहाँ सुन्दर सिन्दूर-युक्त
भ्रूकी वहीं कालिमा अनूपम लखाती थी।
अंजनसे अंजित अरुण रंगवाली श्वेत
आँखोंकी न उपमा कहीं भी दृष्टि आती थी।

---

१ पीले। २ सितारकी खूँटिया।

कलित कपोलोंपै सु-केश, कुंडलोंके मध्य
सुषमा प्रबालोंकी मनोरम दिखाती थी।
भालपै, कि लोचनपै, गालपै कि शारदाके
तरल त्रिवेणीकी तरंग लोट जाती थी। ९

देख जगदम्बिकाका सुन्दर अनूप रूप
दृष्टि चकाचौंध, चित्तकी भी गति गूढ़ा थी।
यह छबि-भार पलकोंको करता था बन्द
सिरपै अखंड राशि पुण्यकी समूढ़ा थी।
आज निज तनय स-नाथ करनेके लिए
भूमिपै समागता मराल-समारूढ़ा थी।
मैं तो नत-आनन पड़ा था बन्दनाके हेतु
मुझको सुना रही प्रजापतिकी ऊढ़ा थी।—१०

"तू ही समवेदनाकी, करुणाकी, कल्पनाकी,
सृष्टि, दृष्टि, वृष्टि है, विशिष्ट तेरी छवि है।
तू ही यजमान, तू ही ऋत्विज महान, तू ही
होता है, हवन है, हुताशन है, हवि है।
ज्ञानका, सुभाग्यका, सुयशका, प्रकाशका, तू
दीपक है, तारा है, क्षपाकर है, रवि है।
तू ही भूत-भावन है, तू ही पूत-पावन है,
परम पिता है, तू अनूप है, तू कवि है"। ११

१ लालोंकी। २ एकत्र। ३ ब्रह्मा। ४ विवाहिता, पत्नी। ५ यज्ञ करनेवाला। ६ यज्ञ करानेवाला। ७ हवन करनेवाला। ८ सबको प्रसन्न करनेवाला। ९ पालनेवाला।

चित्तौड़-दर्शन

अब भी जहाँपर अरावली-शिखर-शोभी,
मेघ बरसाता अभिषेक-मिष पानी है।
अब भी समीरके चमरने अनूप जिसे
निज अठखेलियोंकी रंगभूमि मानी है।
सूर्य-चन्द्र आरती उतारा करते हैं सदा
खगोंने विरद[1] बोलनेकी बान ठानी है।
जन्म-भूमि वीरोंकी, निधन-भूमि[2] सैनिकोंकी
यह ही चित्तौड़ सतियोंकी राजधानी है। १

जीवन-समरसे मिला हो अवकाश यदि,
थोड़ी देर भूत[3] रण-विभव[4] विलोक लो।

---

१ यश। २ मृत्यु-भूमि। ३ गुज़रा हुआ। ४ युद्धका वैभव।

माना कि तुम्हारी हुई वीरता विगत, पर
देख यह धीरता-गंभीरताका ओक¹ लो ।
रक्त संचरित हो कदाचित तुम्हारा, किन्तु
अवशेष आर्य-सभ्यताका अवलोक लो ।
देख इसे निजको सम्हाल न सकोगे आप
हृदय पकड़ आँसुओंकी झड़ रोक लो । २

यह वह गढ़ है बनाया विधिने था जिसे
अपने करोंसे इसे गौरव प्रदान किया ।
यह वह भूमि है कि जिसका गुणानुवाद
अबलौं अनेक कवियोंने सदा गान किया ।
यह वह धाम है अनूप जिसे प्राप्त कर
राजपूत वीरोंने महान अभिमान किया ।
यही वह वेदी जिसे पूत² रखनेके लिए
वीर-देवियोंने अपनेको बलिदान किया । ३

आया एक समय कि आया समाचार यह
होगा समारम्भ यवनोंके आक्रमणका ।
घोर घन-सम घमसान युद्ध घोषणासे
नाच उठा केकी-सा कलाप³ वीर-गणका ।
एक अवशेष—अवलम्ब भुज-दंडका था—
डूबतेको व्यर्थ है सहारा लेना तृणका ।

१ घर, स्थान । २ पवित्र । ३ समूह ।

'हर हर' कूटका शिखर हहराने लगा,
तोष रण-चंडिकाको, घोष हुआ रणका। ४

* * * *

यह है तटी कि जहाँ उभय दलोंके वीर
रुण्ड-मुण्ड-झुण्ड-मय मेदिनि बना गये।
भूमि है यही कि जहाँ युद्ध-ताप-तापित हो
रक्त-घट उबल उबल उफना गये।
अगणित सुभट-समूह पुंज शूरताके
धीर, वीर्य-बलके निकेत, खेत आ गये।
प्रणको न छोड़ा, यदि छोड़ा प्राण छोड़ा, निज
जानको गमाया, किन्तु शान तो कमा गये। ५

यही वह द्वार जिसका कि इतिहास सुन
जाति-अभिमानी धाड़ मार मार रोता है।
जिसका अजस्र अभिषेक करनेके लिए
चन्द्र ओस-कण बरसाकर भिगोता है।
नत-शिर होता जो न देख इस देहलीको
कंधोंपै स्वकीय वह व्यर्थ मुंड ढोता है।
चुपके चलो न कहीं जागके व्यथित बने
समर-श्रमित[1] जयमल यहाँ सोता है। ६

दोनों ओर श्रेणियाँ विलोकिये छतरियोंकी
स्मारक अनूप क्षत्रियोंके बलिदानके।

---

१ युद्धसे थका हुआ।

तिल तिल भूमि काले कोस-सी कटी है यहाँ
खेल खेल जूझे हैं 'लड़ैते हिन्दुआनके'।
इसी पथसे हैं महापथको पधारे और
लौटे पहुँचाके आके सोए सौर[1] तानके।
या कि इन सुदृढ़ समाधि-भवनोंमें छिपे
लूट कर वीर पुण्य-पुंज प्राण-दानके। ७

ऊँचे चढ़ वारुणी[2]की ओर दृष्टि डालिए तो
हरित पयोधि-सा तटीमें लहराता है।
गिरिकी अनुन्नत शिलाकी शक्यता भी लखो
बैरी-वीचि[3]-विभव यहींपै टकराता है।
आती जब अधिक अरातिकी[4] अनी[5] है यहाँ
मुंड-यूथ कंज-पुंज-सा ही दिखलाता है।
मानो शम्भु-पूजनके हेतु विजया[6]के रंग
संग सरसीरुह[7] समुद्र बहा आता है। ८

आप अब पहुँच चुके हैं उस शृंगपर
दिल्ली तक दृष्टि पड़ती है जिसे चढ़के।
सृष्टिके प्रभातकी उषाके समालोक-मध्य
धन्य हुआ, सत्य ही, विधाता इसे गढ़के।
फँस ही चुके थे पारतन्त्र्यके पयोनिधिमें
पाँव फटकारके दिखाये हाथ बढ़के।

१ चादर। २ पश्चिम दिशा। ३ लहर। ४ शत्रुओंकी। ५ सेना। ६ भाँग। ७ कमल।

वीरतामें, धीरतामें, गुरुता-गंभीरतामें
    और और तौर हैं इसी चितौर-गढ़के । ९

यह ही अटालिका है, खेली जहाँ कालिका है
    दौड़ी मुंड-मालिका अराति-अनी-त्रासिनी ।
धाई रक्त-घटको उलट घट-घट पीने,
    आई चित्रकूटाचल[1] विन्ध्याचल-वासिनी ।
जिसकी कृपासे एक एक लड़ा सैकड़ोंसे,
    वही वीर-वृन्द-बल-विभव-विकासिनी ।
तोपके धुएँकी अर्ध-रात्रिमें उदित हुई,
    लेकर स-हास चन्द्रहास[2] चन्द्रहासिनी । १०

इस धरणीके हृदयस्थलपै बार बार
    हुई घमसान महा भीषण लड़ाई है ।
दोनों हाथ लूटी हुई संपति सिसौदियोंकी
    वीरता है, विक्रम है, बल है, बड़ाई है ।
बाईं भुजने बढ़ समक्षमें विपक्षियोंके
    ढाल निज प्रलय-घनाली-सी अड़ाई है ।
भुज दाहिनीने, रिपु-रक्त-अवगाहिनीने,
    सिंहवाहिनीपै मुंड-मालिका चढ़ाई है । ११

देखो यह मृदित[3] भवन-भित्तियाँ हैं खड़ीं
    कहतीं कथा हैं निज, आपको पुकार कर ।

---

१ चित्तौड़का प्राचीन नाम चित्रकूट है । अपभ्रष्ट होकर यह शब्द, चित्रकूटसे चित्तऊर, चित्तौर, चित्तौड़, हो गया है । २ तलवार । ३ ध्वस्त की हुई ।

तोपोंने किया है अंग-भंग इन्हें आतुर हो
बैठ ही गई हैं बोझ अपना उतार कर ।
हंस[1]-वंश-अंश जो समाया रेणु-रेणुमें है
चमक रहा है वृत्त विपुल प्रसार कर ।
चीड़ो यह वक्ष, देखो दिलकी दरारें, यह
सिसक रही हैं, कहो, रोवें धाड़ मार कर । १२

इस ही क़िलेसे वीर केसरके रंग रँगे
निकल पड़े थे तलवारें लिये हाथमें ।
तनमें कवच, लोचनोंमें रोष-रक्तिमा थी,
आननमें लालिमा त्रिपुंड-खौर माथमें ।
बहके हुए-से वृषभासन-वृषेभ[2] सम
धोए मातृ-दुग्धमें, समोए पुण्य-पाथमें[3] ।
उधर निकेत अन्तरंग-रंगमचपर
खेलीं खेल अबला अनेक एक-साथमें । १३

आया अन्त-समय विलोक शोक-संकुला वे
हो गई सजग मृग-शावकी-सभीता-सी ।
वीर-बधुएँ ले वीर-माँएँ वीर-कन्यका ले
वीर-सेविकाएँ अग्निसे ज्यों परिणीता-सी ।
आता देख दुँरित[4] चकित-चित चीता-सम
दौड़ पड़ीं सकल महान अविनीता-सी ।

---

१ सूर्यवंश । २ महादेवके बैलके समान । ३ जल । ४ पाप ।

आई जभी कुंडपै, न वह घबराई कभी
धाई तभी धेनु-सी, समाई सभी सीता-सी । १४

जिस दम हुतै बननेको हवि-वाहनमें
वीर क्षत्रियाणियोंने सुदृढ़ विचार किया ।
हिल उठा गढ़ डगमग अति आतुर हो
मानों शेष-भोगैने ही कम्पन अपार किया ।
सिन्धु बहता जो इहलोक-परलोक-मध्य
देखते ही देखते सभीने उसे पार किया ।
पूर्व-पुरुषाओंकी, समस्त देवताओंकी भी
जय-ध्वनि-मध्य लपटोंने हाहाकार किया । १५

जागी वीरताकी दिव्य ज्योति मही-मंडलमें
भागी भीरुताकी भारी भ्रान्ति-भरी भूतिनी ।
घोर घहराई महातुमुल-निनादिनी हो
भूमि हहराई वीर-पुंगवै-प्रसूतिनी ।
पा गई पवित्रता त्रिकूटसे भी पुण्यतर
चित्रकूट-भूमि बल-विभव-विभूतिनी ।
गगन-गिराने प्रतिध्वनित निनाद किया,
" धन्य राजपूत, धन्य धन्य राजपूतिनी । " १६

*   *   *   *

१ भस्म । २ अग्नि । ३ शेष-नागके फणने । ४ श्रेष्ठ ।

देखो यह विभव, विभूति भक्ति-भावनाकी,
पुंजीभूत यश उस सुयश-शरीराका।
देखो, पुण्य-परिधि अधिक अकलंकीभूत
अंकीभूत भाव श्याम-सुरति-अधीराका।
मान रयदासका[1] अनूप दान जीवनका
देखिए धुरीण महाधैर्य धर्म-धीराका।
बदल रहा है समासक्तिके[2] हलाहलको
मुक्तिके अमृतमें सुकृत यह मीराका। १७

इधर विलोकिए निरन्तर प्रवाहमयी
होती गिरिसे जो वारि-राशि द्रव पारा-सी।
चढ़के दुधारापै बही है महा सिन्धुसम[3]
शत्रु वक्ष चीड़ती अनूप उग्र आरा-सी।
प्रातसे निशामुख लौं, संध्यासे प्रभाततक
करती पुनीत ब्रह्म-शक्ति-समाहारा[4]-सी।
विष्णु-गंगधारा-सी, विरञ्चि-गंगधारा-सी, कि
भूमि-गंगधारा-सी कि व्योम-गंगधारा-सी। १८

देखो दिव्य भवन विराजी महाशक्ति जहाँ
लोग कहते हैं यह धाम आर्यमाका[5] है।

---

१ मीराके कथित गुरु जिनकी समाधि मंदिरके पास है। २ संसार-विषयक संलग्नता। ३ नदीके समान। ४ इकट्ठी। ५ यद्यपि इस समय यह मंदिर कालीजीका है परन्तु कहा जाता है कि पहले इसमें सूर्य भगवानकी प्रतिमा स्थापित थी।

उच्च भावनाओंको समुच्च करनेके हेतु
इसका समुन्नत शिखर वर बाँका है।
जान पड़ता है अंतरिक्ष नापनेके लिए
गिरिने स-गर्व सीधी कर दी शलाका है।
या कि मोह-पुंज छेदनेको, भय भेदनेको
शूल वामदेव[1]का त्रिशूल कि उमाका है। १९

कैसे समझावें उच्चताकी महिमाको उसे
जिसने अनूप उदयाचल न देखा हो।
कैसे न अनघ उग्रताको वह प्राप्त करे
जिसके ललाट अकलंक चन्द्र-लेखा हो।
रानी पद्मिनीका धाम लखके बताइए तो
इस सम अपर कहीं जो अवरेखा[2] हो।
हरित महीपै इन्दु-धवल महल मंजु
मानों पद्मिनी[3]में पद्मिनी[4]की छवि-रेखा हो। २०

काल अनवधि[5] है, विपुल वसुधा है, बन्धु,
एक बार फिर गढ़-विभव निरख लो।
ऊँचे चढ़ अपनी सुबुद्धि-रसनासे स्वाद
परम प्रभूत भूत उच्चताका चख लो।
कुम्भाके अनूप यशोयूप[6]से अनेक भाँति
चारों ओर वन, पुर, सर, गिरि लख लो।

---

१ शंकर। २ देखा। ३ तालाबमें। ४ कमलिनी। ५ अवधि या सीमारहित।
६ कीर्ति-स्तम्भ।

आओ, जन्म कर लो पवित्र, निज मानसमें
परम विचित्र मान-चित्र, मित्र ! रख लो। २१

शिखर समुच्च है, पवन पवमान[1] बहु,
गोद है गगनकी, समोद मन मेरा है।
एक हलचल-सी मची है व्योम-मंडलमें
तो भी वायु-नीडमें[2] प्रशान्तिका बसेरा है।
ध्वंस क्षत्रियोंका 'साँय-साँय' करता है खड़ा—
कालने कराल दृष्टि डालकर हेरा है।
अब तो विरोधका नितान्त अवरोध हुआ,
देखता जहाँ लौं है, वहाँ लौं राज्य तेरा है। २२

बस, अब तूने चारों ओर दृष्टि-पात कर
वीर-पुंगवोंकी महावीरता निरख ली।
देख ली महान आत्म-त्यागकी अनूप भूमि,
शान राजपूत सरदारोंकी परख ली।
सिल रख छातीपै विलोकी पत्थरोंकी दशा,
आँसू भर आँखोंमें क़िलेकी आब[3] लख ली।
बुझते प्रदीप-सी समस्त हिन्दुओंकी लाज
नाशके समीरसे चितौड़ने ही रख ली। २३

कितने ही बार ले अपार सैन्य शत्रु-यूथ
विपुल विरोधसे विनाश-बीज बो गये।

---

१ पवित्र करनेवाला। २ वायुके घोंसलेमें। ३ शान।

सानु-भूमिका[1]पै रेल-पेल[2] युद्ध-फाग खेल,
सत्य, सब सुभट स-देह दिवै[3]को गये।
वीर-वनिताओंके सपूत राजपूत-वृन्द
शोणितसे धवल धराकी धूल धो गये।
उस यश-भारसे धसक धरणी यों उठी
फटके फनीशके सहस्र फन हो गये। २४

शृंग शूरताका है भटोंको राज-रंग-संग
धाम सुहृदोंको है, द्विषों[4]को कूट कारा[5]-सा।
मुकुट-समान शिरोभूषण सिसौदियोंका,
काल-दंड-ताडित सुयशका नगारा-सा।
एक अवशेष—अवलम्ब धर्मधीरताका—
कर्मवीरताका बाँका सुदृढ़ सहारा-सा।
शौर्य-शिलालेख-सा पड़ा है मूक भूतलपै
आज भी चितौरगढ़ अजित अखारा-सा। २५

या तो पिंडीभूत हो पड़ा है अवनीतलपै
सुयश-पराग पद्मिनी-सी महारानीका।
होकर समूँढ़[6] श्री प्रतापका प्रताप पड़ा
मान कर मूँदित[7] मुहीम[8] मुग़लानीका।
उलट कि गौरव-गिरीन्द्र पड़ा हिन्दुओंका
या कि पड़ा ग्रन्थ एक करुण कहानीका।

---

१ पर्वतकी चोटीके मैदानमें। २ अंधाधुंध। ३ स्वर्ग। ४ शत्रुओंको। ५ जेलखाना। ६ एकत्र। ७ ध्वस्त। ८ आक्रमण, चढ़ाई।

या कि वार विविध अपार वीर क्षत्रियोंकी
खोपड़ीको खाके पड़ा खप्पर भवानीका । २६

आज भी तड़ागोंमें तरंगित जो होता नीर
उसकी अपार तीव्र-नीरता कहाँ गई ?
भक्षकर भूरि सुभटोंको न डकार ही ली
इस अचलाकी वह धीरता कहाँ गई ?
तोपोंकी दहाड़को गुणित करती थी कभी
आज वह गगन-गंभीरता कहाँ गई ?
खेली चंडिका-सी अवनीके हृदयस्थलपै
वीर क्षत्रियोंकी वह वीरता कहाँ गई ? २७

संध्या हो चली है ढोर[1] आते हैं वनस्थलीसे
लीजिए विदा गृह, गहन, सर, सबसे ।
देखो, अजों[2]-चरण-प्रहारित उठी है धूल
तोपके धुएँ-सी जो प्रतीत होती तबसे ।
जीवन-समर लड़ते थे इसी भाँति-से क्या ?
करते चढ़ाई बाँकुड़े थे इसी ढबसे[3] ? ।
पकड़ खुरोंको चलो पूछ लें इन्हींसे, हाय !
राजपूत-सिंह ! बकरी तू हुआ कबसे ? २८

१ पशु । २ बकरियोंके पैरोंकी ठोकर खाकर । ३ तरह ।

हरिश्चन्द्र-घाट

संध्या हो चुकी है, तारे चमक रहे हैं कुछ,
छलक रहा है तम-अंजन गगनमें ।
दृढ़ हो चला है, असितांग[१] रजनीका राज्य
दीपक-प्रकाश फैला सदन-सदनमें ।
देव-धुनि[२]-धारा धीरे-धीरे धरती है पद
मौनता विराजी है विहंगोंके वदनमें ।
गिर-सा रहा है श्याम पटल विभावरी[३]का
मिट-सा रहा है भेद भीतें[४]में भवनमें । १

बाजे बजते हैं मंदिरोंमें संध्या-वंदनके,
मान्यता मिली है डफ[५], मुरज, सितारको ।

---

१ काला । २ गंगा । ३ रात । ४ दीवार । ५ एक बाजा ।

घट भर-भर निज सद्न सिधारे लोग
मीन बैठे तलमें विहाय गंगधारको ।
दिन-भर नाविक चलाते तरणी जो रहे
डालकर लंगर गये हैं गेह-द्वारको ।
छोड़ गये मेरे आत्म-चिन्तनके हेतु वह
जाह्नवीकी धारको, निशाके अंधकारको । २

देखो, तम-तोमसे विफल हो रहे हैं दृग
सामने सुदूरके सुदृश्य न दिखाते हैं ।
केवल कभी कभी नदीके उसपार कहीं
सारस-मिथुन[1] शब्द करुण सुनाते हैं ।
देरसे लगाके दम गाँजेकी चले हैं जो कि
ताल-स्वर-हीन तान केवट लगाते हैं ।
घेर रहे सफल विटप चमगादड़ हैं
पीपलपै क्रोशै[2] क्रूर कौशिक[3] मचाते हैं । ३

गिरि-सम सामने लगी है राशि ईंधनकी
पास ही चमकती चिताकी चिनगारी हैं ।
भूषित भुजंग-भूषणोंसे भगवान यहाँ
करते निरंतर निवास त्रिपुरारि[4] हैं ।
सृष्टिके अनादि आदि-कालसे ही आजतक
हुए भस्मसात[5] अगणित नरनारी हैं ।

---

१ जोड़ा । २ शोर । ३ उल्लू । ४ महादेव । ५ भस्मी भूत ।

होते बड़े पुण्यसे, पुराकृत सुकृतसे या
भाग्यसे यहाँपै जलनेके अधिकारी हैं । ४

चढ़के विमानपै पधारी सतियाँ हैं यहाँ,
हो गईं सदाको पति-संग चिता-शायिनी ।
क्षार हुई सूखे तृणकी-सी एक क्षणमें ही
मंडली नृपोंकी विश्व-शासन-विधायिनी ।
घोर मानियोंका अभिमान भी यहींपै मिटा,
भेंटी साधुओंने शम्भु-भक्ति अनपायिनी[1] ।
कोपसे जराके[2], या प्रकोपसे ज्वराके[3] यह
चारु चंद्रचूड-वसुधा है मुक्ति-दायिनी । ५

आये कुछ ढोल डफ मुरज मृदंग-संग
सजके बरात ज्यों चिताको बरने चले ।
आये कुछ ऐसी बिलखाती वनिताके संग
कोना किसी लोकका यथा हों भरने चले ।
आये कुछ अबला-अबल परलोकवाली
काली काल-ब्यॉली[4] सरिताको तरने चले ।
आये कुछ ऐसे मगहरमें[5] बिताके जन्म
अन्तकाल आते काशिकामें[6] मरने चले । ६

जीवन-मरणका रहस्य जाननेका दंभ
रचके अनेक मौतके शिकार हो गये ।

---

१ अविनाशिनी । २ बुढ़ापा । ३ मृत्यु । ४ तुरन्त मार डालनेवाली सर्पिणीके समान । ५ मगध देशका अपभ्रंश । ६ काशी, बनारस ।

देवगुरु[1]-सदृश विराजे शिष्य-मंडलीमें
    शास्त्रके प्रणेता दुनियाके पार हो गये।
पढ़के पुराण पता कालका लगाया, किन्तु
    कंधेपर चार वाहकोंके भार हो गये।
काशिकाके विपुल वरद सुत शारदाके
    आये इसी घाटपै यहींपै क्षार हो गये। ७

उन आननोंमें लगी आग जो अयाची बने
    थूकते मिठाई, पकवान, पान, मेवा थे।
काल-भोग हो गये समृद्ध बाल-भोगवाले,
    मौतके कलेवा हुए करते कलेवा थे।
और वह सुन्दर शरीर भी शिखीमें[2] जले
    बहु सेवकोंसे जो कराते सदा सेवा थे।
बीसियों थे वाहन, पचासों जिनके थे धाम,
    सैकड़ों सुहृद थे, हज़ारों नाम-लेवा थे। ८

सारे सृष्टि-भेदोंका अभेद कर देती सदा
    सारी धूम-धाम धाम-धामकी मिटाती है।
जीवनका मोह-मद क्षणमें विलीन कर
    एक दिव्य लोक—नव्य ओकै[3]—दिखलाती है।
आती जब आती अनिवार्य रूपसे ही वह
    व्योम फोड़ आती है, पहाड़ फाड़ जाती है।

---

१ बृहस्पति। २ अग्नि। ३ घर।

एक शम्भु-शक्ति ही समस्त भूमि-मंडलमें
मृत्यु उपनामसे प्रसिद्ध पद पाती है। ९

माताके गले मिले स-मोद बाल्यकालमें जो
कुछ बढ़ते ही जो पिताके भी गले मिले।
मित्रोंके गले मिले सदैव प्रेम-भावनासे
होके परिणीत[1] वनिताके भी गले मिले।
देवी-देवताओंके गले मिले जरठ[2] होके
वे ही आज देखिए चिताके भी गले मिले।
एक क्षण छोड़ी न गलेसे मिलनेकी बान
शान्तनु-नरेश-दयिताके[3] भी गले मिले। १०

जिनकी गदाने वारणोंकी[4] गंड-मंडलीका
शोणित मृगेन्द्रवाहिनीको था पिला दिया।
असिसे जिन्होंने वाजि-राजियोंको काट-काट
काक, गृद्ध, श्वान, जम्बुकोंको था खिला दिया।
प्रबल प्रचंड प्रलयंकरी अनी[5] ले संग
भूमिकी कथा क्या, मेरु-मंदर हिला दिया।
सत्ता, शक्तिमत्ता लखो, मृत्युकी महत्ता लखो,
पत्ता-सा उन्हींको धूल-धत्तामें मिला दिया। ११

जीवनके मदमें उमड़ पड़ते हैं घोर
बहते अबाध हैं परिधि[6] तोड़ जाते हैं।

---

१ विवाहित। २ बूढ़े। ३ गंगा। ४ हाथियोंकी। ५ फौज। ६ मर्य्यादा।

फूले न समाते हैं महान अभिमानवान
होकर अशान्त क्रोश-कलुष[1] मचाते हैं।
सारी दुनियाको सिर-पर रख घूमते हैं,
झूमते प्रमादमें प्रचंड बन जाते हैं।
जीवन-दिनेशका चिता ही चरमोचल[2] है,
शाम यहाँ होती है, विराम यहीं पाते हैं। १२

एक बार जाकर किसीके भी न लौटे प्राण
नाता मृत्तिकासे चाहे जितना निबाहिए।
याद कर ईंट-पत्थरोंके मिष प्राणियोंकी
दाहा न चिता तो अपना ही चित्त दाहिए।
फिर न जियेंगे, न जियेंगे, न जियेंगे यह
हेतुसे इसीके वेद-विधि अवगाहिए।
ठीक है समाधिके सदन बनवाना नहीं
स्मारक निधनका चिता ही एक चाहिए। १३

*   *   *   *

केवल गुणी-जन, सुजन, सुख-धाम भूप,
पंडित, प्रसिद्ध जन ही न यहाँ सो गये।
आये वह भी जो थे अकिञ्चन दुखित दीन
जीवनका कलुष आँसुओंसे सब धो गये।
पूरा जन्म-काल आधे पेट ही व्यतीत कर
जाना न किसीने कहाँ, कब दिवको गये।

---

१ शाब्दिक पाप। २ अस्ताचल।

उन्हीं धनवान-धान्यवानके समान यह
रुत[1]-युत हो गये, चितामें हुत हो गये । १४

ऐसे अप्रसिद्ध नर-पुंगव जले हैं यहाँ
पाते अवकाश तो महीपै क्रान्ति करते ।
छूटते सुयश कुरुराजकी पराजयका,
रावण-विजय करनेका दम भरते ।
साम-गान-द्वारा इन्द्रियोंको दाम-बद्ध कर
दंड देते दुष्टको, खलोंमें भेद भरते ।
जीवन-मरुस्थल न काटते समस्थल पै
अति विषमस्थल रणस्थलमें मरते । १५

होते यदि नायक विभीषण अनीके वह
ठानके हमीर-हठ वैरियोंसे लड़ते ।
शक्ति चक्रवर्तिनी कहीं जो मिल जाती उन्हें
लाँघके पयोधि मेरु-शिखर पकड़ते ।
मोड़ देते ऐसे इतिहासके प्रवाहको कि
सीज़र सिकन्दर शशा[2]से जान पड़ते ।
जीते तो विजय-वैजयन्ती फहराते वीर
मरते तो सुमन विहायस[3]से झड़ते । १६

पारस थे पर पत्थरोंमें ही पड़े हुए थे,
निहित[4] सदा ही रहते थे सूम-धन-से ।

---

१ चिल्लाहट । २ खरगोश । ३ आकाशसे । ४ छुपे हुए ।

ज्यामितिके बिन्दुसे अ-मान रहे अन्त तक,
निपट अदृश्य थे अतनके[1] भी तन-से ।
ओझल दृगोंसे रतनाकरके आकरकी
गोलकमें डोलते अमोलक रतन-से ।
देखा न किसीने उगे, फूले, मुरझाये कब
बीहड़ विजनके सुवासित सुमन-से । १७

सिंचित किया न दान-वारिसे किसीका कर,
पारकी न वाहिनी अलक्त[2]-रक्त-भरिता ।
नायक बने न देश-जातिके कदापि वह,
की न भूलसे भी साधु-वृत्ति दुष्ट-चरिता ।
संकलित सम्पति नहीं की भूप-मंडलीसे,
की नहीं प्रजाजनमें विपति वितरिता ।
पुण्यके पहाड़ थे न पापके पयोनिधि थे,—
तुच्छ करुणाकी राशि, कामनाकी सरिता । १८

मेरुपर चढ़के त्रिलोक-समालोक-कारी
सूर्य्य ही विलोक सकता था दूर-दृष्टिसे ।
शिला-शृंग-श्रेणीसे न पथ अवरोधित था,
क्षुब्ध था न नीरधि तमारि[3]-ताप-वृष्टिसे ।
उथल-पुथल करती थीं वीचियाँ[4] न जहाँ
होती तुंग-वेलितें[5] न वे थीं मान-मृष्टि[6]से ।

---

१ कामदेव । २ लाल । ३ सूर्यकी धूपसे । ४ लहरें । ५ ऊँची लहरवाली । ६ परिष्कार ।

वहाँ हुई उनके प्रशान्तिमयी जीवनकी
चूर तुच्छ तरणी सुदूर सारी सृष्टिसे । १९

निबिड तमोमयी रजनि बढ़ी जा रही है,
गगन-गँभीरता गँभीर हो चली है और ।
देखो रोदसी[1] भी कालिमासे समालिंगित है,
नीर-शुक्लताको जह्नुजा[2] भी खो चली है और ।
सारे तमचुर[3] डूबे और गाढ़ी नींदमें हैं,
सारी सुप्त सृष्टि काशिकाकी सो चली है और ।
किन्तु मेरी कलि-कलुषित काव्य-कल्पनाकी
म्लानता पुरारि[4]की कृपासे धो चली है और । २०

भव्य भगवान भूतनाथकी कृपासे मुझे
भूत वर्त्तमान वर्तमानमें दिखाता है ।
ख्यात हुआ घाट जिस भूप[5]के सु-नामसे है
वही अवधेश डोलता-सा दृष्टि आता है ।
कंबल-वसन, नग्न-पाद, कर्म-मग्न, क्या ही
सुन्दर स-तेज ओजवान दिखलाता है ।
गाते जिसके थे कविगण गुण-गण, वही
गुन-गुन गाता आज समय बिताता है । २१

एक हाथ लकुट द्वितीय कटिपै है धरे,
बिखरी सितासित[6] लटें हैं भुज-मूलपै ।

---

१ पृथ्वी और आकाशके बीचका स्थान । २ गंगा । ३ अँधेरेमें सोनेवाले । ४ शिवजीकी । ५ राजा हरिश्चन्द्रके नामसे हरिश्चन्द्रघाट । ६ काली और सफ़ेद ।

टहल रहा है किसी गोरख-यती-सा भूप
चिताके किनारे जाह्नवीके उपकूलपै ।
देखता कभी-कभी स-ध्यान आसमानको है
दृष्टि डालता है चरणोंमें लगी धूलपै ।
मानो निज भूमिमें अटन करनेको चले
काशीको बिठाके शिव-शंकर त्रिशूलपै । २२

आती एक ओरसे अतीव ओजवाली कोई
आकृतिसे दीना जो मुखाकृतिसे रानी है ।
दारु[1]-खंड-सा मृत किशोर गोदमें है लिये
रो-रोके अलाप-रही करुण कहानी है ।
आते ही विनष्ट हुआ किसका बुढ़ापा आज
पाते ही विनष्ट हुई किसकी जवानी है ?
एकवसना[2]का एक तनय दिगम्बर[3] है,
एक रोहिताश्व, एक शैव्या महारानी है । २३

आकर चिताके पास लकुटी-समान गिरी
छूटा शव हाथसे लकुट-सा तनयका ।
रानी महादु:खिनी पछाड़ खा रही थी पड़ी
होता द्रव सुनके हृदय स-हृदयका ।
किन्तु निज-प्रण-प्रतिपालक नरेश बढ़े,
हाथ निज दक्षिण[4] पसारके विनयका ।

१ लकड़ी । २ एक वस्त्र पहने हुए । ३ नंगा । ४ दाहिना ।

"माई ! मुझे 'कर' दो जलाना चाहती जो शव,
स्वामीका, तुम्हारा, भला चाहिए उभयका" । २४

"मैं थी कभी रानी, अब दासी हो चुकी हूँ, हाय !
होती काल-चाल किसी भाँति विफला नहीं ।
मेरा एक-मात्र पुत्र सर्पसे डसा गया है,
किये उपचार, किन्तु एक भी चला नहीं ।
आधा वस्त्र फाड़के लपेट शव लाई यहाँ,
होता आधे वसनसे मेरा भी भला नहीं ।
मैं हूँ हत-भागिनी मरूँगी माथा फोड़ यहीं,
कर[1]-कठिनाईसे जो तनय जला नहीं" । २५

"पहले ललाट पै लगाता चोवा-चंदन था
अब तो चिताकी भस्म देहपै रमाता हूँ ।
प्रथम कभी था महाराज-पद-भूषित पै
आज मैं तो सेवक श्वपच[2]का कहाता हूँ ।
दिन रमता हूँ यहाँ, रात रमता हूँ यहीं,
कफन लिये बिना न शव जलवाता हूँ ।
माई ! मुझे कर दे जलाना चाहती जो, न तु
तेरा पुत्र फेंकता हुआ मैं दृष्टि आता हूँ" । २६

रानी हुई घोर अन्धकारकी निशा-सी शून्य
राजा हुए उत्थित[3] अपूर्व दिवसेश-से ।

---

१ टैक्स । २ चाण्डाल । ३ खड़े ।

विबुध-विमान संचरित हैं समीर-सम
धाई धर्म-ज्योति है महान दूर देशसे।
देव-यक्ष-किन्नर विहंगसे विरुद गाते,
जागे तमचुर विश्वामित्र-अमरेश[1]-से।
देखो राज-दंपति स-पुत्र उड़े जा रहे हैं
युक्त धर्म-विभव, विमुक्त भव-क्लेशसे। २७

* * * *

हो रहा प्रभात, शुक्र उदित हुआ है तीव्र,
सुरसरि-स्नानको पधारे संत-जन हैं।
ओस-कण ढलने लगे हैं विटपोंके तले,
तारागण रोते देख रजनि-निधन हैं।
कुछकुछ कालिमा प्रतीची[2]-अंक-मंडित है,
युक्त कुछ और ही प्रभासे उपवन हैं।
ब्रह्म-काल-मध्य मनोमंडलके अंबरमें
मंजु मेदुरित[3] नवजीवनके घन हैं। २८

रजनी जली है चरमाचल चितापै अब
प्रथमा[4] दिशाने रवि-पुत्र उपजाया है।
एक मरता है, एक जन्म ले रहा है, ऐसा
चक्र ही विचित्र चक्र-पाणि[5]ने चलाया है।
युक्त नहीं विधिका विधान अनभिज्ञता[6]से,
मृत्युको तृतीय जन्म वेदने बताया है।

---

१ इंद्र (दोनों राजाके शत्रु)। २ पश्चिम दिशा। ३ घिरे हुए। ४ पूर्व दिशा। ५ भगवान्। ६ बेसमझी।

यही गमनागम है, यही जन्म-मृत्यु-वाद,
यही शेष ज्ञान, यही एक महामाया है । २९

उदित दिनेश अब होकर रहेगा नव्य
तारोंसे कहो कि वह हाथ अपने मलें ।
निधर्न[1]-स्वरूपिणी निशाका अन्त होगा अब
व्यर्थ न प्रभंजन[2] व्यजन[3] अपने झलें ।
जीवन-मरणका न अन्त कभी होगा यहाँ
जन्म लें असंख्य, अगणित शव हो जलें ।
सुरसरि-स्नानसे निवृत्त हो, प्रवृत्त होके
विश्वनाथ-ध्यानमें, ' अनूप ' घरको चलें । ३०

---

१ मृत्यु । २ वायु । ३ पंखा ।

ताज-महल

शरद-विभा है, शुभ्र राका[1] है महान रम्य,
पीने[2] हुए पुलिन[3] कृशित यमुनाके हैं।
मेघ-जाल-जटिला मलीमसा[4] दिगंगना[5]के
धोते अंग अमल निचय चन्द्रिकाके हैं।
कुमुद-समूह-से खिले हैं तारकोंके वृन्द
राजहंस-तुल्य रूप-रंग चन्द्रमाके हैं।
कैसे सेत सकल महीरुह[6] हुए हैं यह,
कुन्तल[7]-कलापसे पुरातन धराके हैं। १

पहने सिताम्बर[8] पुनीत परिधान रम्य
जिसमें जटित छवि तारकावलीकी है।

---

१ पूनों। २ चौड़े। ३ रेतीले किनारे। ४ मैली। ५ दिशारूपी स्त्री। ६ पेड़। ७ बाल। ८ श्वेत वस्त्र।

आनन-प्रसन्न तारापति ही प्रकाशमान
आभा त्रिवलीकी ऐरावतकी गलीकी है ।
शोभा सम्पुटित सरसीरुह-विलोचनाकी
हंस-बाल[1]-व्यजना शरद्-रमणीकी है।
कैसी अनपायिनि[2] विधायिनी इराकी[3] यह
गोद-मोद-दायिनी प्रकृति-जननीकी है । २

काल है निशीथ, गगनस्थित निशाकर है,
रोदसी अतन्द्र[4], गति-अलस समीर है ।
कुंजसे करीलके निकुंजसे तमालके भी
शोभित तरणि-तनुजाका[5] रम्य तीर है ।
भूपै एक शान्ति अवतरित हुई है, जोकि
साधनामयी गभीरतासे भी गभीर है ।
देखो वसुधापै सुधा-धवल महल, जिसे
देखके सुधाकर हुआ ज्यों छाँहगीर है । ३

देखिए समक्ष, स्वच्छ, सुन्दर, सुडौल, शुभ्र,
स्वप्न देखता-सा मौन मंदिर विराजा है ।
जिसपै मरीचि-मालिकाओंने विकीर्ण बन
परम प्रशस्त परिवेष[6] दिव्य साजा है ।
मानों काल-राहुसे अभीत चंद्र-कीर्ति-पुंज
मुक्ति-मूल यम-भगिनीके[7] कूल भ्राजा है ।

---

१ छोटे हंसोंके परोंका पंखा है जिसका । २ निरुपद्रव । ३ सरस्वती कविता । ४ जागृत । ५ यमुना । ६ घेरा । ७ यमुना ।

सब महलोंका ताज महल प्रसिद्ध यही
सकल समाधियोंका एक-छत्र राजा है । ४

शान्ति मौन होके मौनतापै हँसती है खड़ी,
मौनता स-चेत और भी है मौन धरती ।
देखो राजराज-महाराज-सिरताज-यश—
चंद्रिका निसर्ग-चांद्रिकामें स्नान करती ।
नभ झुक जाता है सु-छबि अवलोकनेको
गरिमा विलोकनेको भूमि है उभरती ।
चन्द्रहास[1]-गौर गौर-रंग-सिरमौर, इस
गौर रंगपै ही गौर-अंगनों है मरती । ५

मूर्ति मोद-दायिनी अक्षय्य रमणीयताकी
देखिए सुधाकी माधुरीमें सन बैठी है ।
नयनाभिरामताकी साड़ी शुभ्र ओढ़कर
पुंजीभूत विद्युत विहाय घन बैठी है ।
देख ऐसी अमित अलौकिक विचित्रताको
धारणा विचित्र मित्र ! मेरे मन बैठी है ।
पति-रति-रंजित नवागत वधू-सी या कि
प्रेमकी पवित्रता रहस्य बन बैठी है । ६

---

१ चन्द्रहास चाँदीका भी पर्य्यायवाची है । २ किसी अँग्रेज़ महिलाने ताज-महलको देखकर कहा था कि यदि कोई ऐसा ही मक़बरा मेरे लिए बनवा दे तो मैं अभी मरनेको तय्यार हूँ ।

चारु चन्द्रचूड[1]-चूड़-चन्द्र-चंद्रिकाकी द्युति
निकली ललाटसे प्रकाश करती हुई।
सुन्दर समुज्ज्वल विशेष भव[2]-भूतिसे भी
भूति शंभु-कूटपै विभाकी झरती हुई।
व्योममें विदित हुई शरद-पयोद-राशि,
सिन्धुमें तुहिन-पुंज-आभा भरती हुई।
भूमिपै विराजी जह्नु[3]जाकी स्वच्छ संपदा-सी
कालिमा तमारि[4]-तनयाकी हरती हुई। ७

* * *

सावनकी सघन अमा[5] थी काल-यामिनी-सी,
प्रकट न एक भी गगनमें तरय्या[6] थी।
व्यस्त घोर कष्टसे मुग़ल-भूप-प्रेयसी[7] थी,
होती डगमग आज जीवनकी नय्या थी।
कन्यका शकुन्तलाके तुल्य उपजाके मंजु
मेनका-समान स्वर्ग जाती एक मय्या थी।
अति विकराल कुहू[8]-मध्य सभी भाँति हुई
निधन-समाधि-सी कराल सौरि[9]-शय्या थी। ८

हाल सुन भूपति विपन्नतासे आतुर हो
छोड़ निज सेज महिषीके पास आ गये।

---

१ शंकर। २ शंकरके अंगकी विभूति। ३ गंगा। ४ यमुना। ५ अमावस। ६ तारा। ७ शाहजहाँकी बेगम मुमताज। ८ अमावास्या। ९ प्रसूति-गृह।

कु-दशा विलोक निजको वे न सम्हाल सके,
अश्रु-बुन्द उनके दृगोंपै द्रुत छा गये।
देखते ही देखते स-संभ्रम प्रियाके नेत्र
बिज्जु चमकाके वारि-धारा बरसा गये।
फड़क-फड़क नीर-हीन सफ़रीसे[1] फिर
एक बार घूमें, घूमकर पथरा गये। ९

महिला-मुकुट-मणि महिषी मनोरमाका
एक गुना रूप था, प्रणय किन्तु दूना था।
उसकी क्षणिक अनुपस्थितिमें भूपतिको
सेज क्या, सदन क्या, सकल विश्व सूना था।
विधिने दिया था ऐसा कोमल कलेवर कि
दुखद गुलाब-पंखड़ीसे जिसे छूना था।
परम प्रशस्त पारसीके[2] रमणीयताका
क्या ही अद्वितीय जीता-जागता नमूना था १०

जैसी लोचनोंमें स्वच्छता थी रमणीयता थी
आभा थी न वैसी सम्पुटित जलजातमें।
सुषमा त्रिलोककी समूढ़[3] हुई अंगनाके
आभा-भरे आनन अनूप अवदातमें।
कंजसे, कलाधरसे, कुन्दसे, कपूरसे भी
गौर गौरता थी गजगामिनीके गातमें।

---

१ मछली। २ फारस देशकी। ३ एकत्र।

सुन्दरी मुग़ल-कुल-कमल-दिवाकरको
आकर उषा-सी मिली जीवन-प्रभातमें । ११

कमल मयंकसे मयंकसे कमल हीन,
कमल-मयंक संगे-सद उसमें ही थे ।
हरिका न हरिण, हरिणका न मित्र हरि,
साथ हरि-हरिण सुखद उसमें ही थे ।
शंभुके न काम, कामके न पास देखा शंभु,
शंभु और काम सुख-प्रद उसमें ही थे ।
सौरभ सुवर्णमें, सुवर्ण नहीं सौरभमें,
सौरभ सुवर्ण युगपदे उसमें ही थे । १२

गति दी मराल-सी मराल-वाहिनीने उसे
सुयश प्रदान किया रतिके अचंभाने ।
अपनी गोलाई, चिकनाईको गोराई-संग
दे दी जघनोंको कदलीके मंजु खंभाने ।
कामद कला दी कल्प-पादपने बाहुओंको
कटि दी अदंभ वन-सिंहिनी सदंभाने ।
सत्य ही, शचीने दिया सुभग सोहाग उसे,
रूप-रमणीयता दी सचमुच रंभाने । १३

कैसा सुख-दायक विधायक विलासका था
उसका सिंगारोंसे सु-रंग अंग सजना ।

१ एक साथ रहने (बैठने) वाले । २ एक साथ । ३ सरस्वती । ४ निर-भिमान । ५ अभिमानिनी । ६ इन्द्राणी ।

सेजपै अकारण विमुख बन बैठ जाना,
आते ही महीपके मनाते मान तजना।
कर गहते ही लोट लेकर मचल जाना,
मुख चूमते ही ललनाका वह लजना।
क्या ही था सुखद नूपुरोंका मौन होना वह,
मन्द-मन्द मंजु मेखला[1]का वह बजना। १४

भेंट गंध-मादन-समीर मलयानिलको
पाकर पुनीत पारिजात-उपकूलतो[2]।
जाता किसी परम अलौकिक गहन-मध्य
देख जिसे नन्दन-विपिन मद भूलता।
पुण्यके प्रभातमें कुसुम कमनीय कोई
लाखों बार खिलता, करोड़ों बार झूलता।
प्रेम-सरसीके इस प्रणय-सरोरुहकी
काम-कलिका-सा वह भी न कभी फूलता। १५

आभा उन अमित अरुण अधरोंकी आज
प्राण-संग जाके अन्तरिक्षमें समा गई।
कोमल करोंकी कमनीयता कलाधरके
कलित करोंमें खिंच धाम निज पा गई।
सुषमा सुधाकर-सुधासे स्वच्छ आननकी
इस वसुधामें जो सुधाको बरसा गई।
जाके बनी शरद घनोंमें घनसार[3]-राशि
कामिनी प्रफुल्ल कामिनी[4]-सी कुम्हला गई। १६

१ कमरका भूषण। २ समीपता। ३ कपूर। ४ एक वृक्ष।

मानों जल-तल पै निकल हिम खंड आया
परम प्रशान्त महासागर-तरंगसे ।
या कि नवनीतका निचय[1] निकला हो, युक्त
रंगसे सुधाके वसुधाके अंतरंगसे । १९

कैसी वह सुभंग घड़ी थी जिस काल इसे
भूपने बनानेका विचार ठहराया था ।
चारों ओर प्रेयसी-प्रशस्तिके प्रसारणको
एक-एक यूप[2] तुंग शृंग सजवाया था ।
मैं था विद्यमान उस समय न मित्र ! जब
चन्द्र-मुख-चुम्बी चारु शिखर चढ़ाया था ।
पाँव गह लेता बना जिसके लिए था यह
हाथ चूम लेता इसे जिसने बनाया था । २०

आँखें दर्शकोंकी चित्रकारी देखते ही अहो !
द्वारपै अड़ीली एणियों[3]-सी अड़ जाती हैं ।
चौंक पड़ती हैं कमनीयता विलोक वह
शलभ[4]-समान सुमनोंपै पड़ जाती हैं ।
धरती न धैर्य हैं, अधीर हो महान जब
श्वेत उपलोंसे बरबस लड़ जाती हैं ।
मंजु मकरन्दमें निहित मधु-मक्खियों-सी
सुन्दर समाधिमें स-जीव गड़ जाती हैं । २१

१ राशि । २ खंभा । ३ हरिणी । ४ पतिंगा ।

मृत्युके अनन्तर निवास करनेके हेतु
अमर सुयश ले शयन-गृहको गये।
आई महानींद यों अनन्त रजनीमें जिन्हें
जगमें कभी हैं उनके भी दिन हो गये।
देखो श्वेत सदन, समाधि उनकी है यह
द्वैजसे बढ़े जो, पूर्णिमासे घट जो गये।
छोड़ सुख-सम्पति, उतर भव-कंपति[1] वे
संग-संग दम्पति सदाके लिए सो गये। २२

मंदिरके व्याजे[2] फूल फूला सुख-साज कोई
फैला शुभ्रताके मिष सुयश-सुवास है।
देखिए उसीकी मनोभावना नटी-सी बन
रचती शरद-चन्द्रिकामें रम्य रास है।
सुन्दर समाधि यह मुग़ल-महीपतिकी
दुखद विभावनोंका[3] सुखद विकास है।
यश चिरजीवी छोड़ जानेको वसुन्धरामें
विफल मनुष्यताका सफल प्रयास है। २३

जन क्या है ? प्राकृत प्रवृत्तियोंका पुतला है,
तन क्या है ? मुट्ठी-भर हड्डियोंका ढेर है।
मन क्या है ? प्रीतिके निवास करनेका कुंज,
धन क्या है ? प्रेम, राग-मालाका सुमेरु[4] है।

१ समुद्र। २ मिष। ३ मनोभावना। ४ मालाकी सर्वश्रेष्ठ मणि।

दुखद वियोग क्या ? संयोगका दुरन्त अन्त,
सुखद संयोग क्या ? वियोगमें जो देर है।
मृत्यु क्या है ? जीवनके मदका उतर जाना
जीवन क्या ? कुछ ही दिनोंका हेर-फेर है। २४

भर्तृहरिकी गुफा *

शाखामृग शाखियोंपै शाखामृगियोंके संग
कुछ सुनते-से कान ऊँचे किये बैठे हैं।
अमित अभीति-से अभंग-ग्रीव शावकोंको
स-मुद विहंग कोटरोंमें लिये बैठे हैं।
हरिणी हरिणके विलोचनोंमें राजती है,
देखिए हरिण हरिणीके हिये बैठे हैं।
कुमुद-गणोंके कोष-मध्य चंचरीक चारु
मधु पिये बैठे हैं, कपाट दिये बैठे हैं। १

नीपके समीप ही मयूर भी मयूरी-संग
थिरक-थिरक नाचते हैं सुख देते हैं।

---

* यह गुफा उज्जैनके समीप है।

१ बन्दर। २ वृक्षोंपर। ३ बच्चोंको। ४ भौंरे। ५ कदम्ब वृक्ष।

क्षिप्र-सरिताके वालुकामय पुलिनपर
बैठे हुए अंडे कुररीके वृन्द सेते हैं।
जोड़े चक्रवाकके अभीत फिरते हैं यहाँ,
और वहाँ गिरह कपोत-कुल लेते हैं।
किसके प्रभावसे वनज जीव-जन्तुओंके
चित्तमें अलौकिक विचार चारु चेते हैं ? २

एक ओर केसरीके केसर-सटाको खींच-
खींच मृग-बालक महान मोद पाते हैं।
दूसरी दिशामें अति ओज-युक्त श्वापद[1]के
अंग निज शृंगसे कुरंग खुजलाते हैं।
वनमें विहरते नखायुध-सुतोंको देख
दुग्ध सिंहिनीका शश-शाव[2] पिये जाते हैं।
ऐसा कौन उपजा नरेन्द्र अटवीमें वीर
जिससे विमानित मृगेन्द्र दिखलाते हैं ? ३

गुंजरित भृंग-मंडलीके मिष आगतोंके
स्वागतकी उमँग अनूप वृक्ष धारे हैं।
देखिए अपार फल-भारसे लदे हैं यह
शिरसा विनत नत-रूप वृक्ष धारे हैं।
आतिथेय-परम सहित सुमनाञ्जलिके
पल्लव करोंके अनुरूप वृक्ष धारे हैं।

---

१ हिंसक जानवर। २ खरगोशके बच्चे।

कौन-से विरागी अनुराग-भरे साधककी
साधनासे साधित-स्वरूप वृक्ष धारे हैं ? ४

* * * *

विश्व-वंद्य मालव-महीप मंडलीक भूप,
राज-ऋषि, देखो, ऋषिराज बने बैठे हैं।
भोगोंको न भुक्त, अपनेको भुक्त जानकर
आये यहाँ तरुणी-जनोंसे तने बैठे हैं।
पाकर विजय दश-द्वारावती देहपर
काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्रोह, हने बैठे हैं।
भूप कंदराकी देहलीपै हो समाधि-लीन
त्यागे अपराको हैं, परामें सने बैठे हैं। ५

रोग हेतु जान भोग छोड़ दिया कामिनीका
त्याग वंश-विरुद्-विचार गेह क्षयका।
शासनको, नाशका निवेश मान छोड़ा उसे,
त्याग दिया युद्ध जो निधान जयाजयका।
आये यहाँ देखके शरीरमें ज्वरा[1]का भय,
यशमें खलोंका डर, राज्यमें अनयका।
भूप समासीन है विरक्तिके निकेतनमें
केतन[2] जहाँपै फहराता है अभयका। ६

जिनके नवागत युवापनके वासर वे
कच-कुच-कंचन-प्रवंचनमें बीते हैं।

१ मृत्यु। २ झंडा।

जिनकी कृपाणसे न त्राण अरियोंको मिला,
वैरी-वनिताओंके ललाट हुए रीते हैं।
देखो वही मालव-महेन्द्र महाराज आज,
विजयी बने हैं इन्द्रियोंसे रण जीते हैं।
ब्रह्मानन्द-मीलित युगल लोचनोंके बुन्द
बैठे हुए गोदमें स-मोद खग पीते हैं। ७

शैलकी शिलाएँ शय्या-सम सुख-दायिनी हैं,
गेह-सी गुफा भी, मंजु धरणीधरोंकी है।
पास आवरणके निमित्त पादपोंकी त्वचा,[1]
मित्र-मंडली-सी राजि विपिन-चरोंकी है।
भोजनके हेतु कंद-मूल विद्यमान ही हैं,
पनिको प्रशस्त निधि नदियों-सरोंकी है।
देख ध्यान-धारणा-समाधि सत्य होती कथा
जनक दधीचि जैसे महिपवरोंकी है। ८

पहले इन्हें भी था प्रकृति-गरिमासे राग,
होते थे प्रसन्न याचकोंको वित्त दानकर।
प्रेम वनितासे कवितासे अनुराग भी था,
बनते स-मोद थे सुराका गुण-गान कर।
किन्तु आज आयु, युवापन, धन, सम्पतिको
चित्त-से भी चपल-चलायमान जानकर।

---

१ छाल।

आये हैं गहनमें समाधि साधनेके लिए
प्रेम-परमेश्वर महेश्वरका ध्यान कर। ९

ओढ़नेको वनज तृणोंके परिधान रम्य,
भूषित विभूतिसे भुजा ही उपधान हैं।
चलता व्यजन-वायु शीतल-सुगंध-मंद
अतासि[1]-असित नभ वितत वितान हैं।
देखो कन्दराके मंजु उपल-पलंगपर
भक्ति-भामिनीके संग भूपति शयाने[2] हैं।
युवती, सुहृद, बन्धु, सेवक, तुरंग, नाग,
धाम, राज-पाट, सब धूलके समान हैं। १०

जिसमें मनोरथका अगम भरा है नीर
रागके विहंग तैरनेकी धुन धारे हैं।
धाराने वितर्ककी तटंकषा[3] कषासे[4] जहाँ
कूलके स-मूल धैर्य-पादप सँहारे हैं।
मोह-भृंग भ्रामरी दशामें करते हैं नृत्य
चिन्ताकी शिलाके खड़े खंडित कगारे हैं।
मालव-महेन्द्र योगिराज हैं यही जो, इस
आशा-सरिताको पार करके पधारे हैं। ११

सैकड़ों मिलेंगे वीर इस अवनीतलमें
स-मद जिन्होंने दन्ति-कलश[5] विदारे हों।

---

१ अलसीके फूलके समान नीला। २ सोये हुए। ३ किनारोंको तोड़नेवाली। ४ चाबुक। ५ हाथियोंके मस्तक।

सुभट मिलेंगे दस-बीस भी जिन्होंने कभी
क्रोधमें दहाड़ते मृगेन्द्र-वृन्द मारे हों ।
एक-आध पुरुष मिलेंगे खोजनेसे जिन्हें
देख कुसुमायधने आयुध उतारे हों ।
किन्तु काम, करि, केसरीके यही काल, इन्हें
काम-करि-केसरी महेश क्यों न प्यारे हों । १२

विद्या थी, सुयश था, सुहृद्-द्विज-पालन था
रंक-याचकोंको मुक्त-हस्त धन-दान दिया ।
शील-मान-ज्ञानसे चरित्र अति उज्ज्वल था,
पुत्रके समान ही प्रजाका प्रतिपाल किया ।
राग किया, रंग किया, तरुणी-प्रसंग किया,
कामिनी-करोंसे मंजु वारुणी प्रकाम पिया,
किन्तु कुलटा-सी राज-नीति बहुरूपिणीको
देकर तिलाञ्जलि यहाँपै वनवास लिया । १३

प्रेमी पुत्र, मित्र साधु-चरित, कलत्र कल,
विनत प्रजाजन, सभीको अपनाया था ।
सचिव सुवृत्त, क्लेश-रहित मिला था तन,
सुन्दर स्वरूप, अतुलित धन पाया था ।
हिंसासे निवृत्त थे, प्रवृत्त निगमागममें,
करुण सदैव प्राणि-मात्रपै दिखाया था ।
ध्येयको न छोड़ा, देय माना था इन्होंने धन,
प्रेयको न त्यागा, सदा श्रेयको निभाया था । १४

शीर्ण हो चुकी थी सब कामना कलेवरमें,
जीर्ण हो चुकी थी देह जीवनके रणमें ।
निकली जवानी थी सुराके, सुन्दरीके संग,
वृद्धता प्रहार करती थी क्षण-क्षणमें ।
आये यहाँ आयुको विचारके गमिष्यमाण,
धाये अटवीको महाकालकी शरणमें ।
जिसका सुधाधर-सुशोभित सु-मौलि मंजु
उसी मुंडमालीके, कपालीके चरणमें । १५

विनय-विवेक, निगमागम-पठन-फल,
संचित इन्होंने किये संतत स-ध्यान हैं ।
बलसे विपुल वारणोंका मद चूरकर
ताने व्योम-से भी तुंग सुयश-वितान हैं ।
सेजपै, सिंहासनपै, स्वत्वपै सदैव रहे
कमल-दलोंपै वारि-बुन्दके समान हैं ।
अपनी जवानीमें किया यों ओज-संचय कि
वृद्ध हो गये हैं किन्तु अब भी जवान हैं । १६

संध्यामें, प्रभातमें, निशामें तथा वासरमें,
चन्द्र-चूडका ही ध्यान धरते रहे हैं यह ।
लीन रहते हैं अचलाचल समाधि-मध्य
ब्रह्मानन्द-मधु ज्यों मधुप ले रहे हैं यह ।

१ जानेवाली ।

जानकर आगत ' अनूप ' अपनेको, लखो,
मीलित दृगोंको कुछ खोल-से रहे हैं यह ।
परम प्रसन्न योगिराज मात्स्येन्द्र, सुनो,
बोल-से रहे हैं, उपदेश दे रहे हैं यह । १७

* * * *

" देखो, उदयाचलसे जाके चरमाचलको
आयुका निकालता दिवाकर दिवाला है ।
नित्य-प्रति सुन्दरी-सुरा-समृद्धि-संचयके
भूतसे प्रभूत[1] दुःखदायी पड़ा पाला है ।
जन्मने, मरणने, विपत्तिने, जरठताने
भक्ष्य मान मानुषको लक्ष्य बना डाला है ।
फिर क्यों प्रमाद-मदिरासे इस भाँति हुआ
सारा मही-मंडल महान मतवाला है ? १८

" सुन्दर भवन, उपवन, तरुणीजन भी,
रथ, गज, वाजि, उपभोग जो कहाते हैं ।
श्वेत छत्रवाली इन्दिराके सुख-साज सभी
जगमें तभी लौं यह भोग भोगे जाते हैं ।
जब लौं स्व-भाग्यके गगनमें प्रकाशमान
पूरित-प्रताप पुण्य-पूषण लखाते हैं ।
अस्त होते जिनके समस्त व्यस्त होते, यथा
तार टूट जाते हैं, सितार फूट जाते हैं । १९

१ बहुत अधिक । २ सूर्य ।

“ संभव[1]को मृत्यु और वृद्धता युवापनको,
तोषको कदापि द्रव्य-आशा जो न ग्रसती ।
द्वेष न मनुष्यके गुणोंको ढक लेता यदि,
भूपकी सभामें खल-मंडली न धँसती ।
युवक विहंग खींच लेनेको भवोदधिमें,
छवि युवतीकी छाया-ग्राहिणी न बसती ।
तो फिर न होती एक अमरावती ही धन्य,
स्वर्गकी सहोदरा धरा भी धन्य लसती । २०

“ धनकी पिपासा[2] तोष-वारिसे शमन कर
क्रोधके शिखरपै क्षमा[3]को बिठलाते हैं ।
त्यागकर मोह भागकर द्रोह-दम्भसे वे
सत्य बोलते हैं, साधुओंको अपनाते हैं ।
संग पीडितोंका कर मान मान्य मानवोंका
आठों याम दीन-दुखियोंके काम आते हैं ।
कीर्ति छोड़ जाते हैं अमर अवनीपै वही
शान्ति-सुख पाते हैं, सुजन कहलाते हैं । २१

“ भूमि खोदते हैं, सिद्ध करते रसायन हैं,
तंत्र-मंत्र रातको मसानमें जगाते हैं ।
धनिक, धनेश, धरणीपति रिझाते सदा
धातु फूँकते हैं, सिन्धु पार कर जाते हैं !

---

१ जन्म । २ प्यास । ३ दया ।

तेज, गर्व, मान, लज्जा, आदर अनूप धन-
द्रव्य-हेतु मूढ़जन सकल गवाँते हैं ।
फेरमें निनानबेके जीवन बिताते, किन्तु
जितना ललाटमें लिखा है वही पाते हैं । २२

" मधुर मृदंग-संग सरस स्वरोंमें गीत
क्या ही सधी तालपै विनोद बरसाते हैं ।
कैसा सुधा-स्वादु[1] वारुणीका पान रोचक है,
नृत्य देख इन्द्रके अखाड़े हार जाते हैं ।
नन्दन-निकुंज-सुमे[2]-सुरभि पटोंमें बसी,
छूते ही तनूरुह पुलक-कंप लाते हैं ।
पाँचो विषयोंमें[3] इसी भाँति भ्रमते हैं नर,
पाँचों इन्द्रियोंसे इसी भाँति ठगे जाते हैं । २३

" मेघ-अंक-वंक-चपलासे भोग चंचल हैं,
यौवन-उमंग धूम-सी है ध्यान दीजिए ।
नाशवान आयु भी है नीरधि-तरंग-सम,
कालके प्रवाहका प्रवेग देख लीजिए ।
' ब्रह्म ही है सार, सारा जगत असार ', यह
साधु-वचनामृत अनूप क्यों न पीजिए ।
देह-दैव-भूतकी उपाधि-रूप घोर आधि-
व्याधि विर्द्ध[4] कीजिए, समाधि सिद्ध कीजिए । २४

१ अमृत-सा मधुर स्वादवाला । २ फूल । ३ रूप-रस-गंधादिक । ४ नष्ट ।

" वायु, तेज, भूमि, व्योम, नीरको स्वजन, बंधु,
माता, पिता, मित्र, मान अंक भरता हूँ मैं ।
केवल यही हैं पुण्य-पुंजके विकास-हेतु .
शिरसों[1] विनीत हो प्रणाम करता हूँ मैं ।
पुण्यसे उदित ज्ञान-रविकी प्रभासे द्रुत
मोह-महिमाका तम-तोम हरता हूँ मैं ।
बन्धु ! कमलासन[2] लगाकर गुफामें अत्र
सिद्ध-मूल शंकरका ध्यान धरता हूँ मैं ।" २५

१ सिर झुकाकर । २ पद्मासन ।

मार्तण्ड-मण्डल

मंजु-सानु[१] मलय-महीधरके शृंगपर
चपल चरण संचरण कर आया है।
भूपै मल्लि-मालती-मरंद[२] सुखकंद डाल
झंपा[३] कर पंपा[४]से सलिल भर आया है।
तोड़कर भूरि भ्रमरोंके निगड़ों[५]को यह
छोड़कर पीछे पीत शीत-कर[६] आया है।
वारिज-सुरभि-समारूढ़ वायु-वाजि आज
भानु-अग्र-दूतका स्वरूप धर आया है। १

मृदु मुसकान नवलाकी जिस भाँति मंजु
छवि छिटकाती हार-मंडित दहर[७]पर।

---

१ अच्छी चोटीवाला। २ पराग। ३ डुबकी। ४ सरोवर विशेष। ५ बेड़ी। ६ चंद्रमा। ७ हृदय।

अन्तरिक्ष-मध्य उसी भाँति हो प्रसन्न उषा
अंशु[1] चमकाती है स-ओस भूमि-भरपर ।
हेम-युक्त पारदे[2]-प्रकाश विलसा है आज
मानों नव्य नीलगिरि-शृंगके निकरपर ।
खोलने लगा है अरुणाम्बर[3] प्रभात दृग
डोलने लगा है उदयाचल-शिखरपर । २

चन्द्र-जौहरीने व्योम-पण्य[4]-वीथिकाके मध्य
भूमिको सजाई पुष्पराग-तुल्य तारोंसे ।
कुछ भी किया था क्रय-विक्रय अभी न अहो
लूटी गई राशि सप्त-सैंधव-सवारोंसे[5] ।
लूट देख पक्षियोंने[6] शोर जो मचाया घोर
मुक्त करनेको उन्हें मुखर-प्रकारोंसे ।
छोड़ी काल-व्याली मधुपाली[7] कंज-कोष खोल
छूटी ‘ सर-सर ’ सर-सरित-कछारोंसे । ३

होता ऋक्ष[8]-वृन्दका प्रकाश था महान मंजु
दीप जलते थे मंद-मंद घर-घरमें ।
रोदसीमें जुगुनू-समूह था प्रकाशमान
जगमग तारे जगते थे व्योम-भरमें ।
किन्तु जब प्रकट-प्रताप बन भानुमाने[9]
आकर विराजा सानुमानके[10] शिखरमें ।

---

१ किरणें । २ पारा । ३ पीले वस्त्रवाला अथवा पीले आकाशवाला । ४ दुकान । ५ अरुण और सूर्य जो सात घोड़ोंपर सवार हैं । ६ (पक्षमें) सहायक । ७ भ्रमर-समूह । ८ तारा । ९ सूर्य । १० पर्वत ।

ज्योति रही आगमें न जलते चिरागमें न,
भूके किसी भागमें न तारोंके निकरमें। ४

स्वागत, अनन्य-प्राण सकल चराचरका,
स्वागत सदैव उदयाचल-प्ररोही[1]का।
स्वागत, सकल जन-जागृति-विधायकका,
स्वागत, इतर-ज्योति-ग्राहक-व्यपोही[2]का।
स्वागत, दिवस-निशि-ऋतु-अभिभावकका[3]
स्वागत, सु-पथ-हीन नभके बटोहीका।
स्वागत सहस्र, अभिनन्दन अयुत[4], उस
हंस-कुल-प्रेमीका, उलूक-वंश-द्रोहीका। ५

* * * *

काम-तरु-पल्लवके पुंजको प्रसन्न कर,
ऐरावत-कुंभमें सिंदूर भरता हुआ।
आया उदयाचलके हृदय-सरोरुहपै,
देख अनुरागका पराग झरता हुआ।
नन्दन-निकुंजकी प्रसून-गर्भ-वासिनीका
इन्दिरा सुवासिनी[5]का कर धरता हुआ।
मन्दाकिनी-कूलके सरोजोंको खिलाता हुआ,
निकला दिवाकर प्रकाश करता हुआ। ६

---

१ चढ़नेवाला। २ दूसरे ज्योतिष्मान पदार्थोंको भी दमन करनेवालेका। ३ रक्षक, पालक। ४ करोड़, असंख्य। ५ अच्छे वस्त्रवाली।

ओषधीश[1] ओषधे[2] प्रकाशते न देख रवि,
उज्ज्वल मरीचि-वृन्द मन्द पड़ जाते हैं।
सूर्यकान्त[3]-पुंज उदयाद्रिपै पड़े जो मंजु
वे भी प्रातसे ही मन्द-मन्द मुसकाते हैं।
सिद्ध-साधुओंके अर्घ्य-दानसे प्रसन्न-चित्त
अर्यमा[4] दिशाकी देहलीपै जब आते हैं।
पत्र हिल जाते, पिलें[5] जाते हैं सरोंपै भृंग,
चक्र[6] मिल जाते हैं, सुमन खिल जाते हैं। ७

देखिए, प्रकृति-कृत-नियम-विरुढ़[7] रवि
तीनों भुवनोंके अंधकारको हटाता है।
एकदेशसे ही सर्व-देशको प्रदीप्त कर
कालके, दिशाके परे द्युति दिखलाता है।
अगम अपार जो सितीकृत[8] विहायसमें[9]
होकर उदित सिन्धु मुदित बनाता है।
देखो वही शैलको, गहनको, तडागको भी,
पुरको, महीको प्रकटाता हुआ आता है। ८

तारकोंका नाश कर, चन्द्रका विनाश कर,
अग्निको हुताश[10] कर आता अंशुमाली[11] है।
सृष्टि नेत्र-मोदकी, प्रलय अंधकारकी भी,
होती जगतीकी एक प्रथित[12] प्रणाली है।

---

१ चंद्रमा। २ पौधे, जड़ी बूटियाँ। ३ मणि विशेष। ४ सूर्य। ५ संलग्न हो जाना। ६ चकवा चकई। ७ आरूढ़। ८ सफ़ेद किया गया। ९ आकाश। १० निराश। ११ सूर्य। १२ श्रेष्ठ।

तुल्य तूलिका[1]के रंगमयता-प्रदान-कर
रंजक प्रभातका प्रभाव कान्तिशाली है।
क्या ही वसु[2]-दिग्गज-कराग्र-सरसीरुहोंने
अरविन्दनाभ[3]की विभूति दिव्य पा ली है। ९

लालिमाको और भी ललित लालिमासे रँग,
कालिमा हटाते जब आते रवि-कर हैं।
होते गिरि-शिखर-विभूषण मरीचि-वृन्द,
विदित महत्त्व निरुजत्व[4]के निकर हैं।
सूर्यचक्र[5]-वेधी योगियोंको दिव्य दृष्टि देते,
तत्त्व-ज्ञानियोंके एक संश्रत[6] प्रवर हैं।
परम प्रमोद-पूर्ण चक्रवाक-दंपतिके
नयन-पुटोंकी मंजु संपतिके घर हैं। १०

विद्युतसे अधिक प्रचंड चक्रबन्धु-द्युति
देख मन ही मन सुरेश भय खाते हैं।
सारी कालिमाका ध्वंस देख भगवान विष्णु
अतसि-असित[7] तन सिन्धुमें छिपाते हैं।
इन्दु इन्दुशेखर[8]के शेखरका मन्द देख
[9]भृंगीगण अधिक कोलाहल मचाते हैं।
केवल प्रसन्न हैं विरंचि कमलासनपै
कोश-कारागारसे विमुक्त छवि छाते हैं। ११

---

१ कूची। २ आठ। ३ विष्णु। ४ स्वास्थ्य। ५ योगका एक अंग। ६ आश्रय। ७ अलसीके फूल-से नीले। ८ महादेव। ९ शिवके गणविशेष।

पहले प्रकाशता है बावन-स्वरूप रवि
ओजमयी लालिमा-समेत दिखलाता है।
होता फिर प्रखर प्रसार रंग[1]-राशिका है,
विपुल विशाल जो प्रकाश प्रकटाता है।
यों ही बलि[2]-असुर-स्वरूप इस भूतलके
घोर अन्धकारका कुशासन मिटाता है।
सत्वर अनन्त अंतरिक्षको फलाँग कर
लीला[3]से त्रिविक्रम[4]को तरणि हराता है। १२

प्राचीका अनूप कशमीरजे[5] तिलक मंजु
विद्रुम[6] विदित उदयाचल-शिखरका।
त्रिभुवन-भवन-प्रकाशी एक-मात्र दीप
कंकण अरुण उदयाके नील करका।
आते जिसके कि भ्रम फैलता महीतलमें
कुंकुम-सिंदूर-पल[7]-पल्लव-निकरका।
गौरीकी, गणेशकी, मृगेन्द्रकी, महोक्ष[8]की भी
भ्रान्ति हरनेमें बीत जाता काल हरका। १३

आगे कर-निकर मंजीठ-रंग-वाले चले,
संगमें मिलिन्द-यूथ घोष[9] भरता हुआ।
कोक हुए मुदित विशोक वारिजात देख
चक्रवाक चरण अधीर धरता हुआ—

१ वर्ण। २ असुर विशेष। ३ सहजमें ही, बिना प्रयास। ४ विष्णु। ५ केसर। ६ प्रबाल या लाल पेड़। ७ मांस। ८ बैल। ९ शब्द।

लोकालोक-कारक[1] करोंसे एक श्वासमें ही
सकल महीका तम-तोम[2] हरता हुआ।
निकला बंधूक[3]-गुच्छ-गरिमा-विदारी रवि
शोर्ण[4] शुक-तुंड-छवि क्षीण करता हुआ। १४

भागने लगे हैं रजनीचर धरातलसे
निकर उलूकोंका अदृश्य हुआ जाता है।
ज्योति जुगुनूमें न प्रकाश दीप-वर्तियोंमें,
तारोंका तरल तेज भी न दिखलाता है।
निहत हुई हैं कलाधरकी कलाएँ सभी
शेष न तमी है, तम-लेश न लखाता है।
प्राची-मौलि-मंडन मिहिर[5] उदयाचलसे
मुदित बनाता लोक उदित दिखाता है। १५

होकर रजोवती[6] प्रभात-इन्दिराने निज
कंजारुण[7] चरण स-संभ्रम लगाया है।
फूल उठा गगन-अशोक-धरणीरुह[8] भी
नव कलिकाका गुच्छ अरुण लखाया है।
परम रसिक किसी स-मणि[9] भुजंगने कि
चाटुल[10] प्रवृत्तिको समक्ष यों दिखाया है।
चरमी[11] विलासिनी अचरमी[12]-दृगम्बुजोंको
भूषण दिखाकर विपुल बिलमाया है। १६

१ संसारमें उजाला करनेवाले। २ राशि। ३ एक लाल फूल। ४ लाल। ५ सूर्य। ६ रजस्वला। ७ लाल कमल-सा लाल। ८ वृक्ष। ९ धनी। १० वैश्याका साथी। ११ अत्यन्त। १२ पूर्व दिशा।

किन भूभृतोंने न चढ़ाया पाद[1] शीसपर
सत्य ही मही-महेन्द्र मिहिर कहाता है।
जुगुनूकी दमक समाती चन्द्रिकामें, और
चन्द्रका प्रकाश भानु-भास बन जाता है।
किन्तु हो असुर काल-चक्रके क्रमानुसार
जब दिव्सेश वारुणीको अपनाता है।
प्रातसे ही कंपित-चरण-कर होकर सो
अम्बरको[2] त्याग मैचप[3]-सा चला आता है। १७

लेके एक-तन्त्रे[4] द्रुत-वैसन[5]-समान कर
परदा तमिस्र[6]का समूल मिटा देता है।
संकुचित कंजको प्रफुल्लता प्रदान कर
सारा विश्व अपनी भुजामें भर लेता है।
देव-लोक-आजिरे[7], नृदेव-लोक-अंगनमें
खेलते-हुओके चारु चित्तका विजेता है।
सत्य ही कहाता लोक-लोचन[8] ललाम यह
भासमान[9] स्वच्छ अन्तरिक्षका प्रणेता है। १८

एक ज्योति प्रकट हुई है अवनीतलमें,
दो दृग विलोकते जनोंके तीनों लोकमें।
बाये चारों मुख हैं विरंचि देख-देख जिसे
पंच तत्त्व होते हैं प्रकट समालोकमें।

---

१ किरण। २ कपड़ा, आकाश। ३ शराबी। ४ एक ताने-बानेवाला। ५ धूप-छाँह नामक कपड़ा। ६ अँधेरा। ७ आँगन। ८ संसारका नेत्र। ९ सूर्य।

होते प्रभवित षट ऋतु जिससे ही सदा
आता खेद सप्त-ऋषि-मंडल त्रिशोकमें।
पाते आठ दिग्गज प्रमोद नैव अंशुओंसे
होता मोद दश-विदिशाओंके भी ओकमें। १९

आशो-सुन्दरीका अति सुन्दर मुखारविन्द
होता है अनूप रवि-छविसे प्रकाशमान।
तरुण-अरुण-जातरूप-रूप-दीधितिके[4]
मध्यमें विलोकिए पिशंगतो विराजमान।
सरस-सहस्र-सरसीरुह-विलोचनोंसे
देखते जलाशयोंको करते प्रभा प्रदान।
आतप निदाघमें दे, सलिल घनागममें,
हिम दे हिमागममें होते धन्य अंशुमान। २०

रूप देता मणिको द्युमणि अति ओज-युक्त,
देता विश्वको भी नियत स्थिति महान है।
देता दाह-शक्ति अग्नि-दाव-बड़वानलको,
चन्द्रको भी देता अतुलित ज्योति-दान है।
होके लोक-लोचन त्रिलोकको विनोद देता,
शस्यको पयोद-वारि करता प्रदान है।
द्वादश दिवाकरका दान देख शंकित हो,
बनता कलंकित-विरुद सदादान है। २१

---

१ (पक्षमें) नवीन। २ दिशा। ३ सुवर्ण। ४ किरण। ५ पीलापन। ६ सूर्य। ७ सूर्य। ८ यश। ९ ऐरावत।

केवल प्रभातकी न वेला धवलित होती,
सारा मही-मंडल प्रकाशमान होता है।
मेरु ही न होता है विलीयमान रश्मियोंमें
चन्द्र-बिम्ब भी द्रुत विनाशवान होता है।
होती बद्ध-अंजली कुमुद-मंडली ही नहीं,
प्रणत जनोंका आँख मूँद ध्यान होता है।
पलको विरच वासरोंको रचता है रवि
देख पंकजोंको भी उसीका भान होता है। २२

चौर-से, मयूर-से, तथैव सिन्धुवार-से भी
अंशु अंशुमालीके तृषित हो प्रभातमें।
आते हैं बुझानेको पिपासा ओस-कण पीके
क्षोभ व्याप जाता है गभस्तियोंके व्रातमें।
द्वादश दिवाकरकी गणना गिनावे कौन?
एक वृष-भानुकी किरण अवदातमें—
मृत्यु बसी, गुल्मकी है, जन्म छिपा वारिदोंका,
जैसे रेणु-भृंग हों निहित जल-जातमें। २३

मंथनसे सिन्धुके न उपजी कदापि यह
वारुणी बहन न, हलाहल न भाई है।
करमें है कंज किन्तु कमला कहाती नहीं,
हरिके हृदयमें न, भूमिपै सुहाई है।

---

१ घोड़ा। २ किरणों। ३ समूह। ४ छोटे पौधे। ५ शराब।

दोनों ध्रुव छोर लौं, अनन्त व्योम-मंडल लौं,
बजती इसीकी विश्व-व्यापिनी बधाई है।
ऐसी छवि रविकी अमाई तीनों लोकमें न,
फूट कर फैली सप्त-भुवन समाई है। २४

हेषा-रव[1] करते तुरंग सातों दौड़ते हैं,
ऐसे उड़ते हैं पड़ती ही नहीं टाप है।
पन्नग-अभीषुको[2] अनूरु[3] सारथी है गहे
फैला चारों ओर व्याज[4] तापके प्रताप है।
एक-चक्र रथका प्रवेग इस भाँति तीव्र
पाता मनोवेग जिसकी न कभी धाँप[5] है।
ऐसे अति प्रबल त्रिलोक-तम-तोम-हारी
सूर्यकी कथाका पार पाना ही दुराप[6] है। २५

१ हिनहिनाहट। २ लगाम। ३ सूर्यका रथवान। ४ मिष। ५ बराबरी।
६ दुर्लभ।

गजेन्द्र-मोक्ष

कुछ-कुछ तीव्रता बढ़ी थी भानु-भानुओंमें[1]
वर्तमान प्रहर द्वितीय ताप-कारी था।
ओस-बुन्दका भी, दुखियोंके आँसुओंकी भाँति,
होता व्योम-विलय[2] नितान्त शान्त-चारी था।
द्विविध सितासित त्रिवेणीकी तरंग-सम
शीताशीत पवन प्रशस्ति-अधिकारी था।
बहुविध-विभव-विमंडित विहंग-वृन्द
विपुल विनोद-वाहै[3] विपिन-विहारी था। १

ऐसे वारिजोंसे था समावृत[4] तडाग-नीर
मंजु मकरन्द-बुन्द जिनके चुके हुए।

---

१ सूर्य-किरणोंमें। २ आकाशमें लीन होना। ३ वहन करनेवाला। ४ ढका हुआ।

कंज-कोष-मुक्त भृंग भ्रामरी दशाको छोड़
धीर थे सरोज-पंखड़ीपर रुके हुए।
होड़ तरु-शिखर-विहारकी खगोंमें लगी,
सघन गुफाओंमें उलूक थे लुके हुए।
आश्रय प्रदान किये, छाया-ग्राहकोंके लिए,
विनय-विनम्र बने विटप झुके हुए। २

एकाएक पक्षी उड़े, दौड़े मृग, भागे व्याघ्र,
शरभ[1] स-संभ्रम[2] पलायमान होने लगे।
सहज-स-शंक आशीविष[3] कतराने लगे,
भारी भीति-भार भी गवयँ[4]-गण ढोने लगे।
सिंह घबराये अन्य वन्य[5] अकुलाये अति,
सारे जीव-जन्तु दौड़ काननके कोने लगे।
किन्तु वृक[6], महिष, वराह, भालु, शल्य[7], श्वान,
कीश, शश, आदिक प्रसन्न-चित्त होने लगे। ४

उतर त्रिकूट[8]से प्रवेश कर काननमें,
यूथ गजराजका निनाद करता हुआ।
आया उसी कालमें असेत गिरि-जंगम[9]-सा
दिशा-विदिशाओंमें प्रकम्प भरता हुआ।
साल कर शालको, विदार कोविदार[10]-वृन्द,
पाटल-प्रियाल[11]पर पाँव धरता हुआ।

---

१ एक आठ पाँववाला जानवर। २ भ्रमित होकर। ३ सर्प। ४ वनकी गाय; रोज़। ५ वनके जीव। ६ भेड़िया। ७ सेही नामक जानवर। ८ एक पर्वत। ९ चलता हुआ। १० कचनार। ११ वृक्षविशेष।

ताल तोड़ता हुआ, मरोड़ता हुआ तमाल,
आया वारणाधिपे[1] प्रकाममें[2] चरता हुआ। ४

शुंडी[3] संग अपने भुशुंडिनी[4] अनेक लिये
करभ[5]-कलाप-हेतु वृक्ष तोड़ने लगा।
मुंडको हिलाता, वीर शुंडको[6] घुमाता हुआ,
शुंडादंड-घातसे अरिष्ट[7] मोड़ने लगा।
परम प्रमत्त एक-छत्र काननाधिप-सा
धाराके समान दान-वारि[8] छोड़ने लगा।
विपुल विशाल कच्चे कलश समान शीघ्र
व्योममें उछाल शैल-खंड फोड़ने लगा। ५

* * * *

हुआ इतनेहीमें प्रचंडकर चंडकर[9],
आतपकी अवनी समवराधने[10] लगी।
होकर विशाखे[11], फल-रहित, प्रसून-हीन,
मानों वृक्ष-मंडली तपस्या साधने लगी।
कुंजर-करभ-करिणीकी घटनों[12] हो स्वस्थ
शान्ति-सुख पानेका विचार नाधने लगी।
दारु[13]-उपलोंसे छिले चंचल करोंके वह
नासा-पुट फड़के पिपासा बाधने लगी। ६

१ हाथी। २ जी भरकर। ३ हाथी। ४ हथिनी। ५ हाथीका बच्चा। ६ सूँड़। ७ एक प्रकारका वृक्ष, मार्गका संकट। ८ हाथीका मद-जल। ९ सूर्य। १० आराधने। ११ शाखा-हीन। १२ घटा, झुंड। १३ लकड़ी और पत्थर।

देख पड़ा सामने मनोहर सरोवर, जो
अपनी प्रभामें विज्जु-राशिका विजेता था।
नीप-नल-इंगुदी-अशोक-बेत-जालकसे[1]
चारों ओर कुन्दसे घिरा था सुख देता था।
कंजको, कुमुदको निरन्तर तडाग-मध्य
संचरण-शील राजहंस-वृन्द सेता था।
घोर पारावार-सा विभोर बना आँनँदमें
शोर कर तटमें हिलोर नीर लेता था। ७

सत्य, तृषितोंको एक जीवन ही जीवन[2] है,
दौड़ी गज-मंडली तुरन्त उसी सरको।
दौड़ा गंधवाह[3] वन मुग्ध करनेके लिए
दौड़ा हंस-सारस-समूह भूमिधरको[4]।
हस्तिनीगणोंका झुंड त्वरित 'अनूप' दौड़ा
दौड़े कर करभ चलायमान करको।
दान-वारि-घ्राणसे मिलिन्द इस ओर दौड़े,
दौड़ा कंज-गंधसे गजाधिप उधरको। ८

गज-घटनासे घटा भिड़ने वलाहकोंकी[5]
मानों आज स-मद, समोद चढ़ आई है।
दन्तावली विज्जुके समान चमकी जो यहाँ,
तो वहाँ अमन्द ध्वनि अतुलित छाई है।

---

१ वृक्षोंके नाम। २ पानी। ३ हवा। ४ पर्वत। ५ मेघ।

प्राकृत प्रसंग इसी भाँतिसे अप्राकृत हो
द्वन्द्वोतीत भाव यों बढ़ाता सुखदाई है।
चंचरीक-वृन्दमें गजेन्द्र ही समाया, या कि
गज-गंडेमें ही भृंग-मंडली समाई है। ९

आगे चल, आगे दौड़, आगे बढ़, दन्ति-यूथ,
तृषित तो था ही, द्रुत कूद पड़ा सरमें।
तुंगतर और भी तरंग-राजि होने लगी
हहर-हहर ध्वनि लहर-लहरमें।
भृंग भागे सकल भुशुंडे नीर मग्न देख,
मीन-मच्छ जाके छिपे पंकिले विवरमें।
विमल-विमल स्नान करने गजेन्द्र लगा,
करिणी-करभ नीर लेने लगे करमें। १०

देखो करि-करिणी-करभका कलाप क्या ही
स्नान करता है, डूबता है, उतराता है।
एक दूसरेके जो गलेमें सूँड़ मेलता तो
दूसरा भी दृश्य जल-यन्त्रका दिखाता है।
लेके करवट यों नीर-क्रीड़ामें निमग्न होते
देखते ही चित्तमें विचार यह आता है।
मानों पुल टूटनेसे इञ्जिन-समेत रेल
सरिमें गिरी हो यही दृश्य दृष्टि आता है। ११

---

१ दोनोंसे परे। २ कपोल। ३ श्रेणी। ४ हाथीका सुंड। ५ कीचड़वाला।
६ कंदरा। ७ फव्वारा।

सारी नाग[1]-मंडली प्रकाम पूर्णकाम हुई
ऐहिक विभव देखो कुंजर[2]-समाजका।
दारा, पुत्र, पुत्र-वधू, पौत्र, पौत्र-वामा साथ
जाल-सा बिछा है चारों ओर सुख-साजका।
तुष्ट हो चुकी है भूख, तृप्त हो चुकी है प्यास,
भाव न अपूर्ण कोई पीले-सिरताजका।
स-फल, स-उन्नति, स-गौरव, गृहस्थ-सम,
देखिए अनूप अहो भाग्य गजराजका। १२

युग दंडे[3] यों ही स्नान करते-कराते गये,
स्वस्थ हुए सकल परन्तु उस कालमें।
जाग उठीं पाशव[4] प्रवृत्तियाँ भुशुंडियोंकी
खेल खेलने लगे तुरन्त उसी तालमें।
डुबकी लगाते, उतराते, फिर डूब जाते
क्षुब्ध करते थे वारि उछल उछालमें।
कच्छ भागे, मच्छ भागे, अन्य जल-जन्तु भागे
व्यापी अस्त-व्यस्तता समस्त कंज-जालमें। १३

तुंग उठने लगीं तरंगें सलिलाशय[5]में,
फेनिल सलिल अति पंक-मय हो गया।
चूर्ण शुक्ति-कम्बुक[6] उमँड़ उतराने लगे,
नील पथ अधिक अनीलमय हो गया।

१–२ हाथी। ३ पहर। ४ पशुओंकी। ५ तालाब। ६ घोंघा।

टूट-फूट स-विसे सरोज गये सत्वर ही
कुमुदादिकोंमें शीघ्र व्याप्त क्षय हो गया।
द्विरदे-वरूथमें विलीन हुआ तोय, या कि
कुंजर-कलाप नीरमें ही लय हो गया। १४

दैवी-भाव-प्रेरित उसी क्षण गजाधिपका
अग्रिम चरण पड़ा पूँछपर ग्राहकी।
आहत अहीश-सम होकर जलैविहार
क्रोधित गजेन्द्र-पाद खींचनेकी चाहकी।
विपुल निनाद कर पकड़ तुरन्त उसे
चाहा नाप जाना थाह सलिल अथाहकी।
चित्तमें द्विरदके समाई पाँव खींचनेकी,
नक्रैको लगी धुन तड़ाग-अवगाहकी। १५

दोनों मुठभेड़ लगे लड़ने जलाशयमें,
नाग जो कभी तो, कभी नाक खींच लेता था।
गज जो इधर एक नायक था हाथियोंका,
ग्राह भी उधर मकरोंका एक नेता था।
एकने अगर खींचा खटकेसे दूसरेको,
दूसरा झटिति झटकेसे डुबो देता था।
घोर-युद्ध-नद्धे उन दोनोंमें कदापि कोई
होता न विजित और होता न विजेता था। १६

१ नाल या डंडी। २ हाथियोंका झुंड। ३ पानीका हाथी, ग्राह। ४ नक्र, मगर। ५ लगे हुए।

अन्धाधुन्ध होने लगा युद्ध युग जन्तुओंमें
        देख पड़े हींसते, हुँकरते, झगड़ते।
क्रुद्ध-भाव-प्रेरित विरुद्ध एक-दूसरेके
        गिरते घनों-से, धूम-शृंग-से उभड़ते।
ग्रस्त गज-शुंडसे तो ध्वस्त नक्र-दन्तसे हो
        [1]व्यस्त बने एक दूसरेको यों रगड़ते।
दोनों मेरु-मंदरसे, बाये मुख कंदरसे
        बन्दर-से अन्दर धुरंधर थे लड़ते। १७

यों ही द्वन्द्व-संयुग[2] सहस्र वर्ष होता रहा
        दोनोंमें न जीता कोई हारा भी न बलसे।
वारण-करभ-करिणी-गण-समेत गज
        युद्ध करता रहा कुंभीर[3] अविचलसे।
किन्तु जब उसका पराक्रम शिथिल हुआ,
        सूझा मुक्ति-मार्ग भी न मकर प्रबलसे।
अन्तिम पुकार आर्त होकर मचाने लगा,
        जाने लगा नीचेको गजेन्द्र जल-तलसे। १८

" एहो भगवान! एहो दीन-बन्धु! दीनानाथ!
        अब न बचूँगा दुष्ट प्राण पिये जाता है।
दारा, सुत, बन्धु और बान्धव खड़े हैं सभी,
        इनको सदाको नीच ठेस दिये जाता है।

---

१ परेशान। २ युद्ध। ३ ग्राह।

डूबा, अब डूबा, अब डूबा, न बचूँगा हाय !
घात पर घात झखराज[1] किये जाता है ।
आओ नाथ ! धाओ नाथ ! अब तो बचाओ नाथ !
हाय ! हाय ! ग्राह मुझे खींचे लिये जाता है । १९

" हे हे देव-देव ! हे जगन्निवास ! मुक्ति-धाम !
अमित ! अहेतु ! ! जगदेक-हेतु ! आओ, नाथ !
केशव ! मुकुन्द ! घनश्याम ! करुणानिधान !
द्रौपदीके रक्षक मुझे भी तो बचाओ नाथ !
दौड़ो हे हिरण्य[2]-वपु-हृदय-विदारी ! अब,
दीन-प्रतिपालक ! तुरन्त उठ धाओ, नाथ !
डूब ही गया मैं ! अरे ! खिसका रसातलको !
अब तो हरे ! मैं अभी डूबा ! अभी आओ, नाथ ! "

एकाएक तीनों पाँव सरके रसातलको
पुच्छ हुई व्याकुल, भुशुंड काँपने लगा ।
क्षणमें सहस्र हस्तियोंका बल चूर्ण हुआ
अन्तिम उसासें ले गजेन्द्र हाँपने लगा ।
द्विगुण प्रवेगसे तुरन्त ग्राह भीषण हो
व्यालके चरणको चिमट चापने लगा ।
वारण वराक[3] दीर्घ देह न सम्हाल सका,
होकर विपन्न महापथ[4] नापने लगा । २१

१ ग्राह । २ हिरण्यकशिपु । ३ बेचारा । ४ मृत्यु ।

किन्तु हरि-चरणानुराग उस वारणका
बल घटनेसे एक तिल भी घटा नहीं ।
लेकर सरोज देव-देवको पुकार उठा,
किस दुखियाने नाम प्रभुका रटा नहीं ?
चक्र चक्र-पाणिका प्रवृत्त हुआ रक्षणको,
गजने कहा नहीं कि वह प्रकटा नहीं ।
नक्रके गलेको वक्र गतिसे उड़ा ही दिया,
दैवी शक्ति देखो गज-चरण कटा नहीं । २२

चंक्रमित[1] होने लगा चक्र नक्र-ग्रीवा काट
उज्ज्वल अलात[2]-सा प्रकाश करने लगा ।
एक क्षण सम्मुख गजेन्द्रके उपस्थित हो
चारों ओर विपुल प्रभाव भरने लगा ।
ऊँचे उमथाकर वितुंडने[3] विलोका जब
वह हरि-आयुध त्रिताप हरने लगा ।
एक-टक दिव्य द्युति उसकी विलोकते ही
परम अधैर्य द्विप[4] धैर्य धरने लगा । २३

देखा तदनन्तर प्रकाशमें स्वरूप दिव्य
काम-अभिराम[5], छवि-धाम, स-प्रभा ललाम ।
शंख-,चक्र-,पद्म-,गदा-भूषित भुजाएँ चार
वलयादि-संयुत, सुखावह[6], सरोज[7]-दाम ।

---

१ घूमने । २ चरखी । ३–४ हाथी । ५ कामदेव-से सुन्दर । ६ सुखदायक । ७ कमल-नालके समान ।

शरदिन्दु[1]-निन्दक मुखारविन्द मंजु अति,
        श्रवण स-कुंडल, किरीट-युक्त केश श्याम।
पीत-परिधान, पहिचान करुणानिधान
        जाना धन्य निजको विलोका जभी घनश्याम। २४

करिने बढ़ाया कर चरण-ग्रहण-हेतु
        ग्राह भी सिधाया जहाँ शाश्वत[2] समाज था।
हरिने बढ़ाया पद ऐसी शीघ्रतासे तत्र
        सहसा पिछड़ता दिखाता पक्षिराज[3] था।
जाते लखा प्रभुको न आते लखा किन्तु, यही
        सारे देव लोकमें अचंभा हुआ आज था।
देखा नाथ-साथमें स-देह झखराज एक,
        दूसरा, समीपमें, अ-देह गजराज था। २५

---

१ शरच्चन्द्र। २ सनातन। ३ गरुड़।

मेरा ग्राम

कुसुमित होते फूलते हो मुरझाते तुम
सुमन कभी तो एक दो दिन जिया करो ।
आते मधु पीनेको अनेक चंचरीक उन्हें
हीन-रस होकर मलीन न किया करो ।
होकर प्रचलित प्रभातके पवनद्वारा
झूम-झूम झोंके मन्द-मन्द ही लिया करो ।
देख निज-जीवन-रहस्य अपनेमें छिपा
हँस पड़ते हो कभी बोल भी दिया करो । १

अंतिम ऋचाएँ पढ़ीं प्रातके विहंगमोंने
पल्लवोंमें चरमावरण पहना दिया ।

---

१ कफन ।

वही अति प्यारी जन्म-धरणि हमारी, हाय !
कैसी हीन हो रही रहस्य है, पहेली है । ४

आता सर्व-प्रथम यहींपै कुसुमाकर था
होकर सवार कीर-कोकिलाके परपर ।
जाता अति अधिक विलम्ब कर पावस भी
भार रख अपना समीरण-शिखरपर ।
होते थे शरद-परिणाम-रमणीय[1] दिन
सोहती निदाघ-निशा पहर-पहरपर ।
बोती थी प्रकृति घर-घर सुषमाकी बेलि
होती थी नवीनता निछावर नगरपर । ५

सुरभित सुंदर सुकोमल सरस अति
क्षणिक यहाँपै जिन्दगानी सुमनोंकी थी ।
मन्द-मन्द आकर श्रवणके समीप सदा
कहता समीर भी कहानी सुमनोंकी थी ।
एक पलको भी एक युग कर देती ऐसी
आयत[2] 'हयात[3] जावदानी ' सुमनोंकी थी ।
धन्य था नगरका युवा-वन अनूप धन्य
यौवन वसन्तका जवानी सुमनोंकी थी । ६

पल्लव-पलंगपै प्रभातमें मिलिन्द-वृंद
गाता महा मोदसे तराना[4] कुसुमोंका था ।

---

१ शरदकी संध्याके रमणीय । २ विस्तृत, लम्बी-चौड़ी । ३ अमर जीवन । ४ गीत ।

दौड़ पड़ता था कलियोंके खुलते ही वह
        क्षणमें ही लुटता ख़जाना कुसुमोंका था।
साँझको विलम्ब मुरझानेमें न होता कभी
        एक ही दिवसका फिसाना[1] कुसुमोंका था।
आनमें बदलती हवा थी कुसुमाकरकी
        बातमें बदलता जमाना कुसुमोंका था। ७

रम्य वह उत्तर-प्रवाहिनी नदीकी छवि
        परम प्रणम्य शिव-मंदिरकी गरिमा।
धन्य सुख-संपतिसमेत नर-नारियोंकी
        रुचिर अनूप रूप-रंगकी मधुरिमा।
सुन्दर सरोवरपै मुदित जनोंके यूथ
        सुखद रसाल-ऋतु-रजनीकी लघिमा[2]।
क्या ही थे विचित्र चित्र मित्र! भूत-कालके वे
        मिट गये ग्रामकी समिट गई महिमा। ८

होती स्वच्छता न प्रतिबिम्बित सरोंमें अब
        उपवन रूपक[3] मरुस्थलके धरते।
लाल-कीर-तीतर-चकोर पिंजड़े ले उड़े
        काक-गृद्ध भाँवरें नृपालयेंकी भरते।
जिन भवनोंमें यज्ञ-धूमने धमार खेली
        धूलके वहींपै धौरहर[4] हैं विचरते।

१ कहानी। २ छोटापन। ३ स्वरूप। ४ कोठी या गढ़।

रातमें ही भूत यहाँ भैरव[1] अलापते हैं
घूघू ताल देते हैं, शृगाल नृत्य करते । ९

आमोंकी निबिड़ वाटिकाकी वलयोंसे[2] बद्ध
आभा इस ग्रामकी अभूत अभिरामिनी ।
होता जब स्वागत फलोंका घन-आगममें
छाती घटा गहर स-मारुत स-दामिनी ।
रातमें रसालोंकी टपाक सुन पादपोंसे
पिककी टहाँक[3] बनती थी अनुगामिनी ।
सार-भरी शोभा थी, बहार-भरी वसुधामें
भार-भरी बाग, अंधकार-भरी यामिनी । १०

* * * *

क्या ही वह सुदिन अनूप मध्यकालके थे
जब इस ग्रामने नगर-पद पाया था ।
चारों ओर परिखों[4] अलंघ्य रचवाके यहाँ
भूपोंने सुदृढ़ गढ़ उन्नत बनाया था ।
ऐसे थे प्रसिद्ध शरणागतके स्वागतमें
उनका सुयश महि-मंडलमें छाया था ।
होकर गदरमें पलायमान लेखकोंका[5]
यूथ निज सभ्यता-समेत यहाँ आया था । ११

---

१ प्रातःकालका गीत । २ घेरा । ३ शब्द । ४ खाई । ५ ग़दरमें लखनऊसे भागकर कुछ कायस्थ यहाँ रहने लगे थे ।

राजनीति-कुशल समूह वह लेखकोंका
रहता था कलम-कुठार सदा ताने ही।
काट-छाँट भूमिकी, प्रजाकी, तथा शासककी
करते थे चतुर दिवानीके दिवाने ही।
दादुर-से कूपमें थे, बक-से स्वरूपमें थे
रूपमें थे रसिक रहस्य बिना जाने ही।
तीतर कड़ाईमें, बटेर बटलोई बीच
शूलपै कबाब थे, शराब सिरहाने ही। १२

भूपति यहाँके थे पराक्रम-धुरीण ऐसे
छाया बनी जिनके कृपाणकी सफलता।
हाथोंके प्रहार ढल जाता था मजीठ-माठ
पावोंके प्रहार युद्ध-सागर उछलता।
आरा-सा अनूप काटता था बैरियोंके वृन्द
तीव्र गंगधारा-सा दुधारा जब चलता।
होते वीर-हाँकसे स-कंप अरि संगरमें
युद्धपै उतारू थारू देश था दहलता। १३

ऐसे शरणागति-परमें वीर शासकोंकी
प्रकृति सुखेन निशि-दिवस बिताती थी।
मल्ल लड़ते थे फरी फेरते स्वतंत्र भट
स्वास्थ्यकी समृद्धि चारों ओर सरसाती थी।

---

१ शरीर क्षत विक्षत होते ही मानों मजीठ भरा हुआ घड़ा फूट गया हो। २ अड़ा हुआ। ३ भारत और नेपालका मध्यवर्ती देश। ४ शरणागतकी रक्षा करनेवाले।

खेती-पशु-पालन-बनिज-बहुतायतसे
प्रकट प्रजामें सुख-संपति लखाती थी।
आकर दिवाली पड़ती थी होलिकाके पाँव
होलिकासे हाथ जन्म-अष्टमी मिलाती थी। १४

कुसुमित जिसको समीरकी समृद्धिने की
काल-कलिकाकी सो सुभगता चली गई।
जिसमें समाई शान्ति-सहित सहानुभूति
वह अवकाशकी विशदता चली गई।
ठेठ ग्राम्य जीवनकी सभ्यता अनादि वह
लेकर मनोहर सरसता चली गई।
भूतकाल-गालमें समाई भूति[1] पत्तनेकी
स्वस्थता, मनोज्ञता, सरलता चली गई। १५

* * * *

कालने कराल करवट भी यहींपै ली है,
होकर वही रहा, रहा जो भाग्यमें बदा।
छाई अत्याचारकी अशान्ति चारों ओर घोर
आई क्रूर कोरट[3] प्रजाको तीव्र तापदा।
कालने मिटाया पात्र, पात्रने मिटाया देश
देशने मिटाया ग्राम, कैसी पड़ी आपदा!
कष्ट हुए इतने कि भ्रष्ट हुए लोग सब
नष्ट हुआ नगर, विनष्ट हुई संपदा। १६

---

१ विभूति। २ ग्राम। ३ कोर्ट आफ़ वार्ड्स।

वह वट-पीपल-विमंडित अनूप-धाम
जिसपै विराजी उच्चताकी अधिकाई है।
वार-वधू[1]-सदृश पधारी राज-सत्ता यहीं
पहले स-हर्ष अभिसार कर आई है।
रास-भूमि श्रद्धाकी, विलास-भूमि साधनाकी
प्रतिभा-विकास-भूमि अमित सुहाई है।
केवल यही है एक अब भी प्रजाका गर्व
सर्व-सुख-संपति-समेत सुखदाई है। १७

अब न यहाँपै हंस[2]-वंशज कलोलते हैं
छाई वसुधामें उदासीनता विशेष है।
राग है कहींपै न कहींपै रंग भासता है
रोग है कहींपै, तो कहींपै घोर क्लेश है।
और सभी भवन धरामें ध्वस्त-प्राय हुए
लेश है पुरातन प्रभाव अस्थि-शेष[3] है।
तेज-हीन पारावार-पतित दिनेश पुर
मेरे जान राहु-ग्रास-ग्रासित निशेश है। १८

एक इमलीका घना पादप यहीं है कहीं
जिसपै विशाल लाल केतु[4] फहराता था।
बैठा एक लँगड़ा मिठाई बेंचता था; कभी
कानपर हाथ रख आल्हा वीर गाता था।

---

१ वेश्या। २ सूर्यवंशी राजा या हंस-पक्षी। ३ केवल हड्डीका बना हुआ।
४ झंडा।

ऊदल[1]के उड़ते तुरंगकी कथाएँ वह
        माहिल[2]की महिमा सक्रोध यों सुनाता था।
रोषमें महीपर उचक पड़ता था वृद्ध
        जोशमें अलाप कर उठ उठ जाता था। १९

परम मनोहर समय वह साँझका था
        घंटा-ध्वनि 'अस्थल[3]' में देरतक होती थी।
श्वान भूकते थे सुन मुरज-मृदंग-रव
        धेनु-धूलि विशद विनोद-बीज बोती थी।
मानों इस ग्रामकी विभूति देख देख कर
        हँसती सुभाग्य थी, कुभाग्य खड़ी रोती थी।
कौन जानता था काल-रात्रिकी कराल चाल
        संध्याके पलंगपै प्रगाढ़ नींद सोती थी। २०

पीठ पंडिताईका प्रसिद्ध हुआ ग्राम यह
        भागवत-पंडित यहाँके बड़े नामी थे।
करते समायत[4] परिधि ब्रह्म-ज्ञानकी थे
        परम प्रकाण्ड कर्म-काण्ड-पारगामी थे।
विदित अनूप विज्ञ[5] उनके अनेक शिष्य
        कोई थे रसज्ञ, कोई छन्द-शास्त्र-यामी थे।
कोई कौमुदी[6]की फक्किकाएँ ही लगाते रहे
        कोई कवि केशवकी भारतीके हामी थे। २१

---

१ आल्हाका छोटा भाई। २ उरईका राजा। ३ देव-स्थान। ४ दीर्घ। ५ जाननेवाले। ६ सिद्धान्त-कौमुदी।

अब भी कहींपै कभी फूल खिल जाते कुछ
औरं मँड़राकर मिलिंद उड़ जाते हैं।
रंग इन्द्र-चापके अनूप अंतरिक्ष-मध्य
गाढ़े पहले थे, अब फीके-से लखाते हैं।
पलित[1] निदाघसे कलित फूल पाटलके
पावसमें कुमुद दलित दिखलाते हैं।
और सर-सरस[2] रसाके[3] बाँके दृश्य सब
आज भी यथा-तथा कहींपै दृष्टि आते हैं। २२

* * * *

एक ओर करुण कथाके भूत भाव ऐसे
अपनी मनोज्ञताका करते प्रचार हैं।
दूसरी दिशामें पारतन्त्र्यसे गृहीत लोग
आनँदपै करते अनेक अत्याचार हैं।
दूबकी हरीतिमा, प्रसूनकी मनोहरता
पत्र नवजात पादपोंके सुकुमार हैं।
देखकर नगर-दशाको उठे मेरे मन,
अश्रुके पयोधिसे भी गहरे विचार हैं। २३

प्यारे ग्राम! नगर! हमारे पुर न्यारे! आज
शोभा वह सुन्दर कहाँ है मनहरणी।
ध्वस्त हुई सकल धराकी धूम-धाम वह
महलोंके ऊपर खलोंकी चली करणी।

---

१ पके हुए। २ तालाबवाली। ३ भूमि।

सब सुख-संपतिकी होलिका यहींपै जली
ऐसी पड़ी विपत्ति न जाती जो कि वरणी ।
तेरे साथ तेरे आततायी भी मिटे हैं आज
धन्य, नबीनगर[1], कि तेरी धन्य धरणी । २४

सत्यके पुजारी, राजनीति-ध्रुव-धारी धीर
प्रथित[2] प्रसिद्ध थे पितामह हमारे यहाँ ।
दानमें महान जो पुनीत गंग-धार-से थे
जिनकी प्रशंसा सुन स-गुण[3] पधारे यहाँ ।
खोया निज मित्रको न पाया कभी क्रुद्ध शत्रु
राज्य किया एक ब्रह्म-शक्तिके सहारे यहाँ ।
अपनी उदारतासे हृदय-विजेता बन
विदित-प्रताप आप स्वर्गको सिधारे यहाँ । २५

घूम घूम देखे कुछ देश-परदेश मैंने
इच्छा है यहींपै कभी वृद्धता बितानेकी ।
कैसे मचा गाँधी-गौरमेंट-युद्ध भारतमें
मुझमें निहित कामना है समझानेकी ।
और कैसे नगर विनष्ट किया कोरटने
सकल कथा है आदि-अंतलौं सुनानेकी ।
जीवनकी साँझमें विरले[4] साथियोंमें मुझे
साध भूत-भावना-विभोर कहलानेकी । २६

---

१ ग्रामका नाम । २ पूज्य । ३ गुणी । ४ एक-दो ।

कैसा वह भाग्यवान नगर-निवासी जो कि
स्वेद वृद्ध आयुमें जवानीका सुखाता है।
विश्वके प्रलोभनोंपै सफल चढ़ाई कर
जीवनके सुगम उतारपर आता है।
जिसके लिए गया न चूसा भी प्रजाका धन
जो न दुष्टतासे दीन-हीनको सताता है।
ईशके विधानको नवाके सीस साधु वही
भूमि छोड़ स्वर्गको सदेह चला जाता है। २७

युद्धकी कथाएँ सारी नगर-प्रथाएँ वह
भूत हुईं जिनकी न याद कभी आयेगी।
वृन्त[1]पर फूलोंके न फूलेगा वसन्त कभी
पावस न भूमिपै हरीतिमा बिछायेगी।
अब क्या फिरेंगे न वे वासर वसुन्धराके
क्या न फिर नगरी समृद्धि-गीत गायेगी।
तो फिर समायेंगे समस्त भाव भूतलमें
शेष एक करुण कहानी रह जायेगी। २८

जैसे उच्च शिखर प्रभातमें हिमालयके
हँसते हैं मिहिर[2]-मरीचियोंके दाम[3]में।
जैसे रवि होता है विपन्न तेज-हीन बन
सिन्धु-मध्य दिवसावशेष[4] यात-याम[5]में।

---

१ डंठल। २ सूर्य। ३ जाल। ४ दिनका अंतिम भाग। ५ गुजरा हुआ।

अथवा यथैव शीत ऋतुके पयोद देख
आती निरपेक्षता मयूर मति-धाममें ।
मोदका, विषादका, तथैव उदासीनताका
सार खिंच आया है असार इस ग्राममें । २९

टूटना लड़ीका फूटना है रेणु-भाजन[1]का
छूटना त्रितापसे जो जगमें कहाता है ।
सूर्यका प्रभातमें उदय-हेतु डूबना जो
जीवको स्वतंत्रताका पथ दिखलाता है ।
श्रान्त[2]को सुषुप्ति[3] जो अशान्तको महान शान्ति
दुःखितके हेतु जो शरण्य[4] बन जाता है ।
द्वार परलोकका, भवन भूत-भावन[5]का
मुक्ति-अभिधान[6] ही निधन[7]-पद पाता है । ३०

---

१ मिट्टीका घड़ा । २ थका हुआ । ३ निद्रा । ४ शरण देनेवाला । ५ शंकर । ६ नाम । ७ मृत्युका ।

स्वतंत्रते, स्वागत !

आ तू शक्ति शंकरी, भयंकरी समाकृतिकी
शत्रु-प्रलंयकरी, शिवे ! महा प्रचंडिके !
क्रोध-रक्त-आनने, चली आ भीम[1]वेगवाली
काली विकराली सर्व-भव-भय-खंडिके !
एक सिंह-नादसे हटा दे शान्ति मृत्युकी भी
मुनि-मन-मंदिर-महान-मोद-मंडिके !
टूट टूट कर दे छटूक छल-छद्म सारे
खंड खंड कर दे, दुरन्त पाप चंडिके ! १

अभये ! विलोक भवदीय बल-विक्रमको
शुंभ होश खोता है, निशुंभ मोह जाता है ।

---

१ भयंकर ।

होती सचला है यह अचला वसुन्धरा भी
पादके प्रहार शेष-भोग[1] झुक जाता है।
एक ही धमकमें धरा भी धँस जाती देवि !
कोल[2] कँप जाता, पीठ कच्छप नवाता है।
डगमग काँपता है अखिल खमंडल भी
सारा ब्रह्म-मंडल कोलाहल मचाता है। २

आठों भुज-दंडोंपै महान भीमकायवाली
शैलकी सुताने व्याल-वलय[3] सँवारी है।
जिससे समुत्थित बिलेशय[4]-बरूथ क्रुद्ध
डालता उगल कालकूट भय-कारी है।
घंटा शूल कुलिश कृपाण बाण चाप लेके
आज वसुधापै जगदम्बिका पधारी है।
जिसकी प्रचंड प्रलयंकरी उपस्थितिने
पावन प्रभाकी पिंग[5] परिधि[6] प्रसारी है। ३

होता उच्च व्योममें त्रिशूल जो त्रिशूलिनीका
भूपै गिरती हैं तारिकाएँ टूट-टूटके।
व्योमके न उगते, उदधिके न व्यक्त होते
चंद्र मंद पड़ते महेश जटाजूटके।
अंब ! शम्भु-शैलपै रद-द्युति प्रसार कर
करती जभी है अट्टहास सुरा घूँटके।

---

१ शेषका फन। २ बराह। ३ साँपोंकी बिजायठ। ४ साँप। ५ पीली।
६ सीमा।

होते हैं धनंजय[1] जिगीषू[2] महाभारतके
होते निधनंजय[3] पिपासू[4] कालकूटके । ४

*　　*　　*　　*

ज्वालामुखी अद्रि लावा उगल-उगल कर
घोर शोर द्वारा चारों ओर हिला देते हैं ।
उमड़ घुमड़ घोर प्रलय-पयोद-पुंज
अट्टहाससे ही मृतकोंको जिला देते हैं ।
बड़वा-निपीडित समुद्र भी उबल कर
सलिल ध्रुवोंके कुहरोंको पिला देते हैं ।
द्वार नरकोंके यमराज बन्द करते हैं,
कंदरा-मुखोंमें योगिराज शिला देते हैं । ५

प्रलय-पयोधर समीप आ झुके हैं आज
चारों ओर विद्युत-प्रकाश प्रकटाते हैं ।
जाग उठी दिव्य एक ज्योति, एक ज्वाला तीव्र,
भाग उठी भीति सारे लोक जगे जाते हैं ।
एक ही दमकमें चमक वसुधा भी उठी
दिल हैं दहलते दिमाग़ चकराते हैं ।
भारी बरिबंड व्योम-चुम्बी तुंग खंडरें-से
विपुल बवंडर धरापै मँड़राते हैं । ६

डगमग डगमग हिलती वसुन्धरा है
धारा सरिताकी तलमें ही समा जाती है ।

---

१ अर्जुन । २ जीतनेकी इच्छा करनेवाले । ३ शंकर । ४ पीनेकी इच्छा करनेवाले । ५ खंडहर ।

फट पड़ते हैं राज-महल प्रकंपनमें
कंपनमें भूमिके त्रिलोकी भय खाती है।
या तो धुरी भूकी भूमि-चालने ही चालित की
शेषकी फणाली[1] या तो झुक झुक जाती है।
व्योमका प्रतिस्वन[2] कुमंडलको आता
या कि, भूमिकी प्रतिध्वनि खमंडलको जाती है। ७

वारिधिकी वीचिके विलाससे, महीधरसे
भूमिसे, तडागसे, मरुस्थलसे, वनसे।
अंधड़से, अग्निसे, भयंकर बवंडरसे
व्योमको दबाए हुए घनसे, पवनसे।
जन्म ले रही है प्रभा परम स्वतंत्रताकी
परवशताके अत्याचारके निधनसे।
फूल-सी रही है एक चाँदनी महीतलपै
झूल-सी रही है नव्य आशा मुग्ध मनसे। ८

प्रकटित होती आज शक्ति है स्वतंत्रताकी
वायुसे भी प्रबल प्रचंड दावानलसे।
मंद करती है तीव्र चाल भूमि-चालकी भी
स्वाहासे बृहत्तर[3] महत्तर[4] अनलसे।
जन्म ले रही है महत्तत्त्वकी महत्ता वह
सत्ता वह शीतल समीरण सजलसे।

---

१ फनोंका समूह। २ प्रतिध्वनि। ३ बढ़कर। ४ ज्यादा।

ज्वालामुखी-ज्वलित-गलित लावा शीतयुक्त[1]
होते हिम-वलितै दलित शत-दलैसे[2] । ९

*   *   *   *

तारकोंके सुमन, मरीचियोंके अक्षत हैं
काँपती खड़ी है लिये प्रकृति पुजापा आज !
एक देशमें ही हाहाकार हो रहा है अभी,
किन्तु अहो, समय ! सभय विश्व काँपा आज ।
बिज्जुके समान तड़पी यों अंब्र अंब्ररमें
झड़पी मनुष्य-पशुतापै मार छापा आज ।
जान पड़ता है शेषने ही करवट ली है
ज्ञात हो रहा है अवनीमें कंप व्यापा आज । १०

आज आर्य-मेदिनी[3] सनाथ करनेके लिए
धाराके समान धरणीतलपै धाई तू ।
होश भी हवाके हवा हो गये विलोक चाल
निदर रही यों चपलाकी चपलाई तू ।
वैनतेय-गतिसे पधारी एक आनमें ही
विश्वपै प्रथम मेघ-माला-सम छाई तू ।
मेरु मोड़ आई तू, कि मेव छोड़ आई तू कि
भूमि तोड़ आई तू कि व्योम फोड़ आई तू । ११

आई आज अमित कृपासे दृष्टि-पात कर
भारत-वसुन्धरामें शाश्वतै[4] विराजा कर ।

---

१ युक्त । २ कमल । ३ भूमि । ४ सदा ।

होकर चलाकर प्रभात-वायु अंबर[1]से
सूर्यकी प्रथम किरणोंकी भाँति भ्राजा कर ।
चंचलाके सदृश महीको चकाचौंध कर
सजल पयोधर समान सदा गाजा कर ।
काननकी ध्वनि-सी समोद व्यनुनादित[2] हो
सिंधुकी तरंगके समुच्च साज साजा कर । १२

संज्ञा[3] बन आई उदयाद्रिके शिखरपर
द्वेष-दोष-दुरित तमी-से भागने लगे ।
दिवस अवाक, काल मूक हो खड़ा ही रहा
अमर[4] विलोक आभा अनुरागने लगे ।
नाशकसे नाशने पुकारा 'त्राहि त्राहि त्राहि'
दान दीन दनुज दयाके माँगने लगे ।
मृत्युका निधन देख, जीवनका जन्म देख
पूरित-प्रभाव भव्य भाव जागने लगे । १३

होकर सवार उनचासवें समीरपर
वैनतेय[5]-गतिसे प्रयाण जब करती ।
त्रस्त बन करती प्रणाम है दिशाएँ सभी
व्योम कँप जाता है, दहल जाती धरती ।
आज तो हिमालयसे सिंधुके समान धाई
आई अचलापर बलाका[6] वेग भरती ।

---

१ आकाश । २ ध्वनित । ३ सूर्यकी स्त्री । ४ देवता । ५ गरुड़ । ६ गजबका

हरिकी प्रिया-सी ज्ञान-मान-दान देती हुई
हरकी प्रिया-सी द्वेष-दंभ-दुःख हरती । १४

डगमग शेखर हिमालयके डोले द्रुत
दोनों ध्रुव उँगली रदोंमें चाँपने लगे ।
तेरे आगमनकी धरामें दुंदुभी यों बजी
भीति-शोक रौरव[1]की राह नापने लगे ।
उथल-पुथल जल-थलमें मची यों घोर
शोर कर शेष भी अशेष[2] हाँपने लगे ।
एक-दूसरेको उठ उदधि जगाने लगे
पूर्व-देहलीपर तरणि काँपने लगे । १५

एकाएक हरिके हियेमें हलचल व्यापी,
विभुता[3] असंख्य लोकलोक रचने लगी ।
व्यक्त हुआ पूषण, प्रकाश चन्द्रमाका हुआ,
तारावली गगन-गिरों[4]-सी जँचने लगी ।
रातमें सुधाकर अमृत बरसाने लगा,
वासरमें वसुधा स-ताप तचने लगी ।
किन्तु इतनेहीमें कठोर तंत्र-हीनता[5]ने
बाँध ली धराको, धाँधली-सी मचने लगी । १६

तेरे बिना सकल धरामें धाँधली यों मची
नगर अराजक, गहन[6] अभिशाप थे ।

१ एक नरक । २ बिलकुल । ३ ईश्वरता । ४ आकाशकी लिपि । ५ उच्छृंखलता । ६ जंगल ।

घोर पशुताके नंगे नाचकी कठोरतासे
        अघ थे असंख्य और कलुष अमापे थे ।
देवतासे दनुज, मनुजसे पतंगेतक
        सकल स-दोष थे, सभीत थे, स-दाप थे ।
क्रोध करते थे, लड़ते थे, युद्ध ठानते थे,
        खींचते थे धनुष, चढ़ाते मूढ़ चाप थे । १७

जैसे वृक-जंबुक-वराह-व्याघ्र काननमें
        जंगम ज्वरों[3]-से सदा घूमते हैं रहते ।
वैसे क्रूर प्राणी पारतन्त्र्यके पयोनिधिमें
        साधु-मति-राहित, अबाध-गति बहते ।
ऊपर अनन्त अत्याचारकी घटाएँ घोर
        नीचे दोष-ग्राह न किसीकी दाप सहते ।
तेरे बिना विवश विदग्ध पाप-धूमिकोंमें
        रूरुसे[5]-चमूरुसे[6] असंख्य जीव दहते । १८

उत्थित[7] हिमाद्रिसे समुत्थित सहस्र-धार
        होके नव्य जीवन प्रवाह लहने लगा ।
नाच उठीं चोटियाँ स-मोद वन-पादपोंकी
        काल अनुकूल हुआ, वायु बहने लगा ।
होने लगी प्रथित प्रतिध्वनि अंगोंके अंग
        भारत-धराका दैन्य-दुःख दहने लगा ।

---

१ बेतौल । २ कीड़े । ३ चलती-फिरती मृत्यु । ४ धुएँका बवंडर । ५ एक मृग । (शुद्ध, रुरु) । ६ मृग विशेष । ७ आदि कालमें हिमालय भी उठा था । ८ वृक्षों ।

कर्मकी प्रथाएँ वेद-मंत्र समझाने लगे
धर्मकी कथाएँ आदि-काव्य कहने लगा। १९

चूड़ामणि विदित वसुन्धरा-विभूतियोंकी
देवि! महिषी[1]-सी तू विराजी भूमितलमें।
सिंहल[2]-धरा है पाद-पीठके समान भव्य
मंजु मेदिनीके महा-महिम[3] महलमें।
बालारुण-रंजित हिमाद्रिका किरीट दीप्त
रम रतनाकर रहा है पद-तलमें।
पवन पयोधर[4]के व्यजन डुलाता, देवि!
तेरी यश-छाया है समस्त जल-थलमें। २०

जैसे एक प्रेम देश-काल-पात्र पार कर
कामनाकी भूमि इसी ओर छोड़ जाता है।
जैसे एक वारिधि पयोदको, नदी नदको,
ओसको मनोज्ञ स्वच्छ सलिल बनाता है।
एक शक्ति देती नव्य जीवनकी ज्योति, जैसे
एक दिवसेश लोक-लोचन कहाता है।
वैसे एक देश यही भारत, वसुन्धरामें
तेरा पाठ सबको स्वतंत्रते! सिखाता है। २१

पुष्ट करनेको बालखिल्य[5] ऋषि-मंडलीको
तू ही जगदम्ब! वेद-माता बन प्रकटी।

१ महारानी। २ लंका द्वीप। ३ बड़ी महिमावाला। ४ मेघ। ५ ऋषि विशेष।

देवासुर-समर प्रशान्त करनेको शीघ्र
सकल चराचरकी त्राता बन प्रकटी ।
भारत-वसुन्धरा सरस करनेके लिए
मुक्त-हस्त-दाता सिन्धु-जाता[1] बन प्रकटी ।
भूपै एक संसृति-समृद्धि रचनेको तू ही
एक-मुखी अपर विधाता बन प्रकटी । २२

गम्ये[2] भूत-कालकी अगम्य कंदरासे ध्वनि
सकल धरामें एक बार फिर धमकी ।
मानो आज उत्तर-दिगंत-दीनताको देख
इन्द्र महाराजकी दराजै[3] गाज गमकी ।
मंत्र-दर्शकोंकी वही व्याहृति[4] ऋचा हो चली
भूको ज्ञान-अग्निमें जलाती हुई लमकी ।
पूषा[5]-सी प्रकाशित हुई जो कर्म-वारिधिमें
काल-सरितामें चन्द्र-बिम्ब-सी सो चमकी । २३

बिजुसे भी अधिक निगाह तीव्रगामिनी है
चाल भूमि-चालकी मजाल हर लेती है ।
होश उड़ जाते हैं पयोदकी धुकारके भी
हुंकृति हिमाद्रिके विवर[6] भर देती है ।
ऐसी है कृपाण जो प्रमाण-हीन दौड़ती है
ज्वालामुखियोंके भी उतार सर लेती है ।

---

१ लक्ष्मी । २ जाना हुआ । ३ बहुत बड़ी । ४ वाणी । ५ सूर्य । ६ लोह ।

होते सुर असुर¹, असुर सुर भूतलमें
तेरी दिव्य भावना कमाल कर देती है। २४

दीपककी ज्योति बुझ जाती प्रात होते जब
तैलकी सुगन्ध सारे धाममें विचरती।
शरद-पयोद लीन होते अंतरिक्ष-मध्य
शीतलता तो भी वारि-वाहै²में ठहरती।
तेरे आगमनके अनन्तर भी तेरी सुध
मानसको ध्वनित मराली-सम करती।
गंगा यथा गिरके सहस्र-धार अंबरसे
शंभुकी जटामें बड़ी देर लौं विहरती। २५

१ सुर पहले असुर और असुर सुर कहलाते थे। २ वायु।

पुष्प-लेखा

एकाएक कोकिल-कलाप मद-माते बन
  वनमें निकूजन ध्वनित करने लगे।
होकर मिलिन्द, मकरन्द-मत्त मंजु घोष
  आम्र-अनुरंजन-जनित करने लगे।
सद्य-अनुभूयमान[1] प्राणित हुआ है मधु
  सौरभ प्रसून प्रकटित करने लगे।
झोंके गंध-वाहके[2] न रोके रुकते हैं, उग्र
  होके काम-किंकिणी क्वणित[3] करने लगे। १

संजनित होती हुई प्राकृतिक नव्यताको
  ओस-बुन्द पानकै[4] पिलाकर जिलाता है।

---

१ शीघ्र अनुभवमें आनेवाला। २ पवन। ३ शब्द-युक्त। ४ घुटी।

अरुण प्रभातके उषाभिराम[1] अंगनमें
सुमन-समूह चटकारी दे खेलाता है ।
खिल पड़ती है द्विज[2]-राजि रवि-रश्मियोंकी,
रात्रि-मुख-राग निज चुम्बन दिलाता है ।
आयु पत्तिकाओं[3]को निवारती खड़ी है यहाँ
वायु पल्लवोंके पालनेपर झुलाता है । २

होता है विलोचनोंमें प्रकृति-नटीका नाच,
कोकिलाकी तानपर कीर गान गाते हैं ।
देखो सह[4]-कार सहकार[5]-मंडलीका मंजु
कर-चरणोंके मिष मंजरी हिलाते हैं ।
सारे उपवनके विशाल वायु-मंडलमें
प्रेमी प्रीति-संभव[6]के मंगल मनाते हैं ।
राई-लोन वारते हैं चंक्र[7]में तितलियोंके
चक्र चंचरीकोंके निछावर फिराते हैं । ३

भूमिज कमल[8] कैसे सुखद खिले हैं यह
देखते स्वकीय प्रतिबिम्ब जल-तलमें ।
फूले अपने ही लोचनोंपै दृष्टि डालें डाल,
भूले स्वीय मंजुता विलोक एक पलमें ।
सुषमा अशोक-मंजरीकी ऐसी मोहिनी है
थिरक रही है हरियालीके महलमें ।

---

१ उषाके कारण सुन्दर । २ पक्षी, दाँत । ३ मक्खियाँ । ४ सहयोग । ५ आम । ६ जन्म । ७ चक्कर । ८ गुलाब ।

मानो रक्तकम्बल[1] बिछे हों नील कम्बल[2]में
बिखरे अंगार हों कि व्योमके पटलमें । ४

वनज गुलाबकी अनूप पंखड़ीके पुंज
मचल रहे हैं गंध-संग उड़ जानेको ।
जिनसे प्रथम-ऋतु-काल-स्राव-लोहित हो
कानन-कुमारियाँ चली हैं इठलानेको ।
खोलतीं पटल प्रति पटल अधीरतासे
अटल उरोज[3]-अनुराग दिखलानेको ।
देखिए, सुवर्णके समुद्रसे निकल गंध—
सरिता चली है वायु-शैलपर जानेको । ५

फूले रंग-रंगके प्रसून अहिफेन[4]के भी,
सुषमा विलोकते ही हृदय हरा हुआ ।
पान[5]-प्रेमियोंका मन मत्त करनेके लिए
शीतल शराब ही शराव[6]में धरा हुआ ।
रजनी-प्रकाश-अंक-ओस-बुन्द-मध्य क्या ही
रजनी-प्रकाश[7]का प्रकाश बिखरा हुआ ।
सिन्धुमें असंख्य वारि-बुन्द लखे होंगे, किन्तु
देखिए, समुद्र एक बुन्दमें भरा हुआ । ६

केतकी विशिष्ट गंधवाहको बनाती रही,
मोहिनी थी मालती अजस्र[8]-पत्र-चालिका ।

---

१ लाल कमल । २ पानी । ३ हृदयमें उत्पन्न । ४ अफीम । ५ मदिरा-पान । ६ प्याला । ७ एक पुष्प जो रातमें फूलता है । ८ निरंतर ।

परिमल-प्रथित प्रसून पारिजातके थे
        जंघा[१] कदलीकी थी अशोक-शोक-घालिका ।
दमनेक[२] यूथीका बकुल-कुल-सौरभ था
        फैली मंजु मल्लिका तमाल-ताल-जालिका ।
पुष्प प्रति ऋतुके पिरोये जिसमें थे, वह
        वाटिका थी रतिके गलेकी वनमालिका । ७

क्षुद्र-घंटिका[३]-सी क्षुद्र सरिता निनादमयी
        उपवन कटि-तट-गुम्फित[४] थी बहती ।
सोती जब कलिका, सजग बनते थे तरु,
        लोरियाँ सुनाती थी, कथाएँ मंजु कहती ।
छनकर छायासे प्रकाश जब आता वहाँ
        होती उसकी थी कमनीय शोभा महती ।
मन्द मन्द जाती अंग-अंग दिखलाती वह,
        संग संग सुषमा बनी ही सदा रहती । ८

तीर-गुल्म-लतिका-समेत वृक्ष वीरुधके[५]
        संध्या-काल पाकर स-पुष्प झुक जाते थे ।
अथवा प्रसून घनीभूत[६] कर पल्लवोंमें
        ओससे वे जुगुनू-समूहको बचाते थे ।
रात्रिको स-गुञ्ज पुञ्ज-पुञ्ज कुञ्ज छोड़कर
        संपुटित कंजमें शिलीमुख[७] समाते थे ।

---

१ जाँघ । २ दमन करनेवाला तथा एक वृक्ष । ३ तागड़ी, करधनी । ४ लिपटी हुई । ५ वृक्ष-विशेष, फैलनेवाला पेड़ । ६ सघन । ७ भ्रमर ।

सारी रजनी-भर पराग-पान करते थे,
होते ही प्रभात वे स-मोद उड़ जाते थे । ९

पश्चिम-प्रयात[1]-विधु-अबल-करोंसे जब
दक्षिण-पवन-पालनेकी डोर डोलती ।
जब चटकाली[2] अमृतोपम वचन बोल
कर्ण-कुहरोंमें वसुधाकी सुधा घोलती ।
और, जब चंचरीक-गुंजनके संग संग
कलकंठ[3]-केकी-कीर-मंडली कलोलती ।
दान कर सौरभ, प्रदान कर भान[4], तब
गान कर प्रकृति कलीकी आँख खोलती । १०

बढ़ती सु-प्रीति और चढ़ते युवापनमें
प्रणयी युगल जैसे एक बन जाते हैं ।
वैसे कुसुमित लतिकामें और पादपमें
सुषमा-सुगन्ध एक-दिल दिखलाते हैं ।
देखो गँठ-बन्धन प्रभातका प्रभाका मंजु
सुमन सुगंधित सु-मंगल मनाते हैं ।
कीर आम्र-मंजरीकी खंजरी[5] बजाते, पिक
ताल दे रहे हैं, चंचरीक गान गाते हैं । ११

* * * *

इस ही वनस्थलीके स्वर्ग-तुल्य अंगनमें
काम-कामिनी-सी[6] एक कान्ति मूर्तिमान थी ।

१ गया हुआ । २ प्रभात-पक्षी । ३ कोयल या कबूतर । ४ बोध । ५ चंग, छोटा डफ । ६ रति ।

अथवा कुसुम-तुल्य तारकोंके मध्य कोई
चार चाँदवाली चारु चंद्रिका शयाने[1] थी।
या कि भीम-नंदिनी[2] समूढ़-यौवना हो मंजु
सुभगा शकुन्तला-सी शोभित महान थी।
कीर्तिकी कुमारिका[3], हिमाद्रि-कन्यका[4]-सी वह,
वासवीय[5] बाला, पद्मयोनिजा[6]-समान थी। १२

भूषण प्रसूनके सजे थे अंग-अंगमें जो
गिर पड़ते थे चलनेमें कभी छूट कर।
जैसे रजनीके गति-शील बननेसे कहीं
गिरते गगनसे सितारे टूटटूट कर।
उसको सरोरुह-समायत[7]-विलोचना था
करता प्रभात पलकोंसे नींद लूटकर।
बन्द होके लोचन विलोकते थे स्वर्ग एक,
यामिनीके चुम्बन-सुधाके बुन्द घूँट कर। १३

उसके प्रसाधन[8]को मेनका घृताची आदि
रजनीमें गतिमें हराती आईं दामिनी।
संतरी-समान तारे जग ही रहे थे, किन्तु
जाना न किसीने गईं कब गजगामिनी।
सोती देख स्वप्नका सिनेमा दिखलाके उसे
चारों ओर बैठके बिताती रहीं यामिनी।

---

१ लेटी हुई। २ दमयन्ती। ३ राधा। ४ पार्वती। ५ इन्द्राणी। ६ लक्ष्मी। ७ फैले हुए। ८ श्रृंगार करना।

दिनमें अवश्य प्रेम-वश्य हो अदृश्य सभी
संग संग घूमती रहीं वे दिव्य कामिनी । १४

उसका सुकोमल हृदय उपवन-मध्य
दूबपर पाँव धरते ही सकुचाता था ।
चूम चूम जाती चरणोंको वृक्ष-शायिको[1] तो
जावक[2] बिना ही पद-तल रक्त-रौता[3] था ।
होके भयभीत वायु छूता वदनारविन्द
तो भी अनुरागसे कपोल रँग जाता था ।
संचरण-श्रमसे जनित श्वास आता जब
लाता संग रंगें[4], पीछे रॉग छोड़ जाता था । १५

जैसी प्राण-वायुके पदोंके तले फैली ओस,
जैसी चंद्रिकासे कान्ति[6] आभा दीप-गनकी ।
जैसे तड़िताका तेज देखके विहंग होते,
जैसी स्थिति होती भाव-क्षुब्ध मूक मनकी ।
जैसी दशा होती योगियोंकी दिव्य ज्योति देख,
वैसी गति होती उसे देखके सुमनकी ।
प्रेम-राजधानीमें जवानी-भरी घूमती थी
रानी कुसुमोंकी, महारानी उपवनकी । १६

चंचल चपल चाल देखके पुतलियोंकी
शत-दृगौं[7] होके लगे मोर नृत्य करने ।

---

१ गिलहरी । २ महावर । ३ लाल । ४ शोभा । ५ संगीत । ६ घिरी हुई । ७ बहुतसे नेत्रोंवाले ।

केश वेणी-बंधन-विमुक्त लहराते देख
बाँधके घटाएँ लगे नीरद घहरने ।
छवि भुज-मूल[1]की दुकूल न छिपा सके तो
कंप लगे करने, समीरमें थहरने ।
कंजको करोंने, खंजरीटेको विलोचनोंने,
मुखने लजाया चन्द्र, बिम्बको अधरने । १७

देखो, केलि-कौतुक अयुत[3] लोचनोंसे यह
ऐसी छवि नित्य देखनेमें नहीं आती है ।
तरणी सुवर्णकी प्रकाशके पयोनिधिमें—
आतपमें तितली स-मोद उड़ी जाती है ।
हाथोंको पसारे मुक्त[4] केश फहराती हुई
बाला वह पीछे दौड़ती हुई दिखाती है ।
पीठपर पीत जो दुकूल लहराता उसे
जान मकरन्द भृंग-भीड़ खिंची आती है । १८

ऐसी थी अनूप रूप-रंगकी तरंग वह
जिसपै चली नहीं तरुणताकी तरणी ।
मूक हुई हंसिनी, मयूरी मंत्र-मुग्ध बनी,
सुषमा शरीरकी गई ही नहीं वरणी ।
सुकृत पुराकृतों[5]की संचित समृद्धि वह
स्नेह-शिला-संवृत[6] सुधा-रसकी सरणी[7] ।

---

१ कंधे । २ भ्रमर । ३ दस हजार, असंख्य । ४ खुले हुए । ५ पहले किये हुए (कर्म) । ६ ढकी हुई । ७ नदी ।

नवल अविद्ध[1] रत्नकी भी मान-मर्दिनी थी,
अलि-अनिपीडित[2] कलीकी मद-हरणी । १९

मधुपावलीमें यदि होता मूक भाव कहीं,
कंज किसी सुरभि-सुधा-निधिमें जमता ।
सुरभित हेमका कलाधर भी होता यदि,
श्रीके मेरुपर तनुतों[3]का वारि थमता ।
होते कुसुमायुधके पास दो शरासन जो,
होती कदलीकी स्थूलतामें जो विषमता ।
तो फिर कचोंकी, लोचनोंकी, मंजु आननकी,
कटिकी, करोंकी, जघनों[4]की होती समता । २०

कानतक फैले हुए युगल विलोचनोंसे
मीन, मृग, खंजन, सरोज शरमाती थी ।
रूप-राशि-भारसे अयुत बल खाती हुई
वेत्र[5]की लतापै अवलम्बित लखाती थी ।
भूमिकी कठोरता-से नत चरणोंका न्यास[6]
देख देव-कन्यका स्थगित[7] बन जाती थी ।
तारावली-सदृश सजाये पुष्प-हारावली
फूली चाँदनीमें हेम-वल्लरी लखाती थी । २१

सारे उपवनमें समाई वह ऐसी थी कि
सुरभि स-देह युवती ही बन आई थी ।

---

१ बिना बेधा हुआ । २ बिना रस ली गई । ३ सूक्ष्मता । ४ जंघा । ५ बेंत । ६ रखना, ठवन । ७ स्थिर, अवाक् ।

उसकी सुगन्धिसे सुगन्धित प्रसून होते,
सुप्त सरसीपै मौन रागिनी-सी छाई थी ।
जीवन-प्रभातकी प्रमादिनी[1] उषा-सी मंजु
दिवस-प्रभा-सी नेत्र-कंज-सुखदाई थी ।
संध्याके समान उन्हीं अरुण विलोचनोंमें
रात्रिकी अदृश्यता अनूप अब आई थी । २२

* * * *

काल-वायु-वाह[2]से प्रदीप बुझ जाता जब
क्षणमें प्रकाश अन्धकार बन जाता है ।
होता अन्तरिक्षमें विलीन मेघ-मंडल तो
इन्द्रचाप-वैभव अ-सार बन जाता है ।
ढीला पड़ जाता तार सुन्दर सितारका तो
कानोंको दुखद स्वर-भार बन जाता है ।
वचन ढलक पड़ते हैं अधरोंसे तब
भाव न किसीका कंठ-हार बन जाता है । २३

स्वर कोकिलाका जब लेता है विराम मंजु
होता रहता है अनुगुंजित[3] श्रवनमें ।
सौरभ, सुगंधित सुमन सूख जाते जब,
फैला रहता है चारों ओरके पवनमें ।
टूट पड़ते हैं जब सुमन महीरुहसे
होते हैं शयान प्रेम-पात्रके अयनै[4]में ।

१ उन्मादिनी । २ प्रवाह । ३ प्रतिध्वनित । ४ गृह ।

मेरा ध्यान उसकी उपस्थिति विना ही तथा
लीन होना चाहता उसीके उपवनमें। २४

धन्य उपवन जिसमें कि थे प्रसून वह
फूल धन्य जिनमें सुरभि वह मोहिनी।
गंध धन्य जिनमें निरत चंचरीक-वृन्द
भृंग धन्य जिनमें सु-प्रीति वह लोहिनी[1]।
प्रेम धन्य जिसमें सु-धीरता विराजी वह
धन्य धीरता जो मनोहरता-व्यपोहिनी[2]।
धन्य मनोहारिता बसी जो पुष्पलेखा-अंग
धन्य पुष्प-लेखा जो सुधाकी सार-दोहिनी[3]। २५

---

१ लाल, सुन्दर। २ हरा देनेवाली। ३ सार निकाल लेनेवाली अथवा सारका पात्र।

जीवन-मरण

एक ही प्रवाहसे प्रवाहित द्विधा हो सृष्टि,
श्रवण-कठोरा बनी लोचनाभिरामा है ।
होता ' अस्ति-नास्ति ' से नितान्त अभिभूत चित्त,
जान पड़ता न दक्षिणा कि गति वामा है ।
मौन-मंत्र-प्रेरित अमौन तन्त्र[1] फैलता है,
गति अलखित देख देख मति क्षामा[2] है ।
मुखर-दिवसके निधनके अनन्तर ही
लेती जन्म तिमिरि-तिरोहित[3] त्रियामा[4] है । १

आधुनिक मानवोंको नियति[5] अबोधगम्य[6]
प्राण हालाहल या अमृत-फल-वाले हैं ।

---

१ ताना-बाना । २ दुबली । ३ अन्धकारमें लीन । ४ रात्रि । ५ भावी । ६ न जानी जा सकनेवाली ।

इस ही रहस्यको असंख्य तारकोंके वृन्द
देख देख बनते अतीव मतवाले हैं।
गणना-विहीन भुवनोंके भूरि भूरि भाग्य
साँचेमें विसर्ग[1]-स्थिति-प्रलयके ढाले हैं।
भूले-हुए कितने जगत-सिन्धु-मन्थनोंसे
फेन-बुन्द-प्राणियोंको विधिने निकाले हैं। २

इससे प्रथम भी यहाँ थी प्राण-गन्ध, जो कि
मृत कृमि-कीट-गुल्म-वल्लरीसे आती है।
सागर-निवासी जन्तुओंकी अस्थि-शेष देह
पाई आज अचल-शिलाओंपर जाती है।
उन्नत हिमालय-शिरस्थ-अस्थि-पंजरोंमें
मृत्यु निज विजयाभिमान दिखलाती है।
अब भी अँगार-प्रस्तरोंमें, जीव-अश्मकोंमें[2],
मृत्यु-चिह्न हैं, पर व्यथा न दृष्टि आती है। ३

देखो इस उपल-अवट[3]का निहित दोष,
जीवन-कलंक पंक होके स्थिर हो गया।
मृत्युको अनूप अमृतत्व-दान करनेको
अचिर विसार[4]का स्वभाव चिर हो गया।
अथवा अनन्त-भावनाका सान्त रूप वह
विकट विरोधमें प्रकट फिर हो गया।

१ उत्पत्ति। २ इन्हें अंग्रेजीमें fossils कहते हैं। ३ कंदरा, प्रस्तरयुगका वर्णन। ४ मछली।

एक मूलपै ही समाधारित निकेत एक
चरण किसीका तो किसीका सिर हो गया । ४

शून्य प्रस्तरोंमें प्रतिध्वनित तरंग हुई
फूटा स्वर-ग्राम पशुओंमें व्यक्ति[1] आ गई ।
उनकी अगम्य गति गेहन[2]-निवासियोंको
गहनै[3]-प्रपंच-भरी रागिनी सिखा गई ।
शोक-मोह-लालसा-क्षुधा-तृषा-विषाद-भीति-
भावनामयी हो जीव-तन्त्र वसुधा गई ।
छूटी जो अमोघ शक्ति प्रकृत समुद्भवसे
जीवन-तुमुल-कोलाहलमें समा गई । ५

पशु-नर पैनॅने[4] सिखाया वेणु-वाद्य जिसे
पशु-नर-मत्स्य अवतारने पढ़ाया है ।
ऐसे इस मनुज-समाजको प्रथमसे ही
अर्ध-पशुओंने राग-रागिनी सिखाया है ।
प्राथमिक प्रथित संगीत-साधनाका स्रोत
होके हृदयोद्गम उन्हींसे यहाँ आया है ।
ख्यात करता है इतिहास, पशु-धातृने ही
मानवोंके सूतिका-निवासको सजाया है । ६

ध्वनिके अपार निराधार तन्त्र-सागरमें
होने लगा संचरित स्वरका सुभाग्य-पोत ।

---

१ व्यक्त करनेकी शक्ति । २ वन । ३ गंभीर । ४ यूनानियोंका एक आदिम देवता जो अर्ध-मानव-शरीरी था । ५ ज़च्चाखाना ।

शिशु-नर आया निज क्रन्दन-कलाप[1] लिये
जीवन-अजिर करुणासे हुआ ओत-प्रोत ।
समय-समयपै करुण-भाव-प्रेरित हो
फूट निकला जो स्वर-संहतिका मंजु स्रोत ।
उसी साधनासे कपि-नर आदि-कवि[2] हुआ,
फूटा शोक-तमसे अमर श्लोकका उद्दोत । ७

नियुत[3] वसन्त बीतनेके बाद, उत्तरमें
वितत मँगोलिया जहाँपै वन-शेषा[4] है ।
अथवा जहाँपै जावा-द्वीप अभी संस्थित है—
(बात कल्पनाकी है, किसीने नहीं देखा है ।)
निपट अपाठ्य लिपिद्वारा उन्हीं अंगनोंमें
होके स्वस्थ काल-ज्योतिषीने लिखा लेखा है ।
खींची गई अस्थि-शेषे[5] कलित कपालपर
मानवीय जन्म-पत्रिकाकी रूप-रेखा है । ८

मानवता तिब्बत पठार[6]से प्रवाहित हो
छूटी हो सहस्र-धार सारे भूमि-तलमें ।
दक्षिणमें, उत्तरमें, और पूर्व-पश्चिममें,
देख पड़ी छाया जातियोंमें, जल-थलमें ।
शाखाओंमें[7], प्रशाखामें, प्रवर्धमान वंश हुआ,
आया रंग-भेद[8] भी मनुष्यता विमलमें ।

१ समूह । २ वाल्मीकि । ३ सौ हजार अर्थात् असंख्य । ४ केवल वनोंसे युक्त भूमि । ५ केवल हड्डियाँ हों जिसमें । ६ ऊँची भूमि । ७ वैदिक शाखाएँ । ८ कालेगोरेका अंतर ।

एकाएक हरिके हियेमें हलचल व्यापी
दीर्घ मार्ग-दर्शन वहींपै शेष हो गया।
जिसका प्रताप व्यापा सकल महीमें, वह
भूरि धन्यवाद-पात्र वासरेश हो गया।
चादर तुहिनकी सरक इस भाँति गई
सिन्धु-देश भूमि, सिन्धु भूमि-देश हो गया।
दूर हुआ निधन-समावरण[1] ऐसा कुछ
सेत वेश सकल असेत भेष हो गया। १२

उच्छल तरंगोंसे तरंगित पयोधि हुआ,
भौंर नाचने लगे अनूप सरिताओंमें।
मीन रंग-रंगके, कुरंग रंग-रंगके भी,
खग रंग-रंगके दिखा पड़े स्व-भावोंमें[2]।
नीरमें, समीरमें, महीमें अंतरिक्ष-मध्य
पादपमें, गुल्ममें, कलीमें, लतिकाओंमें।
परम प्रतिष्ठित प्रथम-अभिनन्दनीय
आदिदेव सूर्य हैं खगोल-देवताओंमें। १३

प्रस्तर-प्रहरणोंने[3] काटा जाडय-जंगल तो
फैले यंत्र-तंत्र आर्य-संस्कृति-समृद्धिके।
पाशविक भित्तिपै उठा जो मानवीय गेह
जोड़े गये मंत्र-नीरद्वारा ग्राव[4] वृद्धिके।

---

१ परदा। २ अपनी प्रकृति अथवा मौजमें। ३ पत्थरके अस्त्र-शस्त्र।
४ ईंट-पत्थर।

शैल-कन्दराकी मंजु शालामें बनाये गये
विशद विचित्र चित्र विस्तृत समृद्धिके ।
पशु अरि, पशु मित्र, पशु देव-देवी बने,
प्रबल प्रमाण जो विलेप-चित्र-सिद्धिके[1] । १४

ग्राव-युग बीता तो शिकारी नर धातु-हेति-[2]
धारी गृहचारीद्वारा अंशुक सिया गया ।
कलित कुटीर, क्षेत्र और पशु-पालन भी
सभी मनुजोंसे काम अपना लिया गया ।
सरिसे सरित-मातृकाके शिशुओंसे[3] पथ
देशका विदेशका भी पार था किया गया ।
मानवोंका चित्त-क्षेत्र उर्वर अनूप हुआ
चारु चरितोंका सौम्य शिक्षण दिया गया । १५

नील[4]-सरिताका नील नीर शील[5]-शिक्षणमें
इतना बढ़ा कि एक सभ्यता समा गई ।
केन्द्र कर बृहत समाधिको बढ़ी जो कभी
भूपर सुदृढ़ मृत्यु-वेदिका[6] जमा गई ।
तारामयी[7] मंजु मौन-भाषा मृत्यु-पात्र[8]द्वारा
अजर[9] सुगीति[10] भी सुमेरियाकी गा गई ।

---

१ अजन्ता आदि पुरानी गुफाओंके चित्र । २ अस्त्र । ३ नदीके किनारेपर संस्कृत हुए मनुष्य । ४ मिश्रदेशकी नदी । ५ चरित्र । ६ पिरामिड । ७ पुरानी सुमेरियाकी लिपि । ८ मृतकोंकी हड्डियोंके पात्रपर अंकित । ९ न जीर्ण होनेवाली । १० प्रशंसा ।

चीनके मलीन भूत कालमें विलीन वस्तु
हिलते हिमालयके हाथपर आ गई । १६

इलम-इरानके विकास-क्रान्ति-विप्लवमें
क्रमसे जवानी, जरा, निधन दिखाते हैं ।
उनके अनूप सभी लक्षण-विलक्षणोंको
आज भी हरप्पा या मोहंजोदरो गाते हैं ।
मानों दीर्घ कालके अनन्तर अभिन्नतासे
नष्ट-मित्रताके चित्र प्रकट लखाते हैं ।
ज्ञात महाद्वीप एक दूसरेसे बद्ध होके
योग यों निविड नाडिकाका दिखलाते हैं । १७

पीछे गोत्र-गोत्रमें विवाहकी प्रथाएँ बहु
जातियाँ बनाके उपजाति गढ़ने लगीं ।
आधुनिक विज्ञोंसे जो निपट अपाठ्य लिपि,
रच नव पाठ सभ्यताका पढ़ने लगीं ।
जीवन-विधायिका प्रशान्ति-सरिताकी फिर
ध्वंस-रूप-धारिणी भुजाएँ बढ़ने लगीं ।
द्राविड-अनार्य-आर्यमें यों घोर युद्ध हुआ
एक-दूसरेकी पूतनाएँ[3] चढ़ने लगीं । १८

मान म्रियमाणं तव निजको मनुष्यता भी
तुमुल मचाने लगी रावें हाहाकारका ।

---

१ नई खोजके अनुसार हिमालयका उत्थान । २ देश विशेष । ३ सेनाएँ ।
४ मुर्दा । ५ चिल्लाहट ।

प्राणके समेत आके कंठमें विराजा तब
गान महाप्लावन[1]का अन्य ही प्रकारका।
शेष सारी कृष्टि[2]का विनाश क्षणमें यों हुआ
ज्ञान भी रहा न भूमि-उदर-विहारका।
तुम्बेके समान भाग्य फूटा भव्य भावनाका
तार तार टूटा सभ्य-शासन-सितारका। १९

किन्तु लक्ष लक्ष नर अंकुरित होने लगे
शीघ्र रक्त-बीज-मृत्तिका-तलसे फिरसे।
ध्वंस-हस्त-चालित कृपाण अवहेल[3] कर
जन्म जनताका हुआ कालके अजिरसे।
दूर हुई क्रम-से यवनिका[4] तमिस्र[5]की भी
ज्ञान-बुन्द छूटा अवकाशके मुदिर[6]से।
सभ्यता-समीर अनवद्य[7] उषा-मध्य चला
गंगामें नहाने सिन्धु-सारित-अजिरसे। २०

वेदी-रचना थी, वेद-पाठ, होम, पूजन था,
दिव्य आर्य-शास्त्र-परिशीलन लखाता था।
अग्नि-मित्र[8]-वासव[9]-वरुण-वंदना थी श्रेष्ठ,
'अस्ति' के निर्बोध[10]का प्रसार हुआ जाता था।

---

१ प्रलय। २ जिसे लोग अशुद्धतासे 'संस्कृति' कहते हैं। ३ निरादृत करके। ४ परदा। ५ अन्धकार। ६ बादल। ७ निर्दोष। ८ सूर्य। ९ इन्द्र १० ज्ञान।

रात थी परन्तु हम जानते कि होगा प्रात
हिंसा थी परन्तु शान्ति-पाठ पढ़ा जाता था।
मृत्यु थी, परन्तु उसको भी संवरण कर
अमित असीम अमृतत्व दिखलाता था[1]। २१

प्राण-ऋक नूतन अनन्तमें ध्वनित हुआ,
रोदसी-अनिल भी तरंगमयी हो गई।
मानवोंकी मंजु चित्त-वीणासे समुत्थित हो
रागिनी उदात्त राग-रंग-मयी हो गई।
अपरूप[2] मींड़-मूर्च्छनासे मंद स्वर-ग्राम,
छोड़, प्राण-वंदना उमंगमयी हो गई।
अंडज[3]से निकली स-मंत्र वेद-वाणावली
द्विज[4]-वदनावली निषंगमयी हो गई। २२

अमृत अखंड मिला यों ही मृत जीवनको
तो भी नहीं आया अंत अब भी निधनमें।
अगणित बीत गये जीव-जन्तु भूतलमें
भूत[5]-भाग्य-भंजन-प्रभूत-भूत-वनमें।
कभी तो प्रकृतिकी उदास ध्वंस-लीला मध्य
और कभी रणमें, कु-कंप[6]में, दहन[7]में।
मरते हैं गिरिमें, गुफामें, जल-प्लावन[8]में,
घोर वज्र-घात-रूप कालके वदनमें। २३

---

१ 'मृतो मा अमृतं गमय,' वैदिक जीवनका संदेश। २ अद्भुत। ३ ब्रह्मा। ४ द्विजाति। ५ प्राणी। ६ भू-कंप। ७ अग्नि-कांड। ८ जलकी बाढ़।

आज भी हमें हैं विसुवियस[1]-कहानी याद,
जानते अमेरिको[2]के विगत निपातको ।
करके अशान्त नृत्य शान्त-महासागरने
शामको सुलाया, पै जगाया न प्रभातको[3] ।
जानते हैं टोकियोके देश-मध्य-ज्वालामुखी
छोड़ते न पौर-पुर-पत्तन[4]के व्रातको ।
कल ही महान पूज्य भारत-वसुन्धरामें
दिनको बिहार[5] बहा, कैटा[6] ढहा रातको । २४

फिर भी प्रकृतिने निपट परिहास कर
अब भी कहानी जन्म-मृत्युकी न शेष की ।
नींवपै निधनकी निरंतर नवीनतासे
प्राणने अदम्य सृष्टि-रचना विशेष की ।
जराके, ज्वराके एक-मात्र जयी आनँदने
इच्छा की अजस्र चित्त-कुहर-प्रवेशकी ।
छाया मृत्यु जिसकी[7] उसीकी अमृतत्व-भरी
कैसी चारुशीला पुण्य-लीला परमेशकी । २५

---

१ इटलीका ज्वालामुखी जिसके विस्फोटसे पांपियाई नगर नष्ट हो गया था । २ भीषण-भूकंपके कारण यहाँ भी भूमि पलट गई थी । ३ कहते हैं पहले एक देशका देश प्रशान्त महासागरमें डूब गया है । ४ नगर । ५-६ आजकलके प्रसिद्ध भू-कंपके स्थल । ७ ' मृत्यु ईश्वरकी छाया है '—श्रुतिवचन ।

वंशी-विजय

तेरे दिव्य वादनपै गाया सबने है राग,
        सभी कवियोंने, कविराजोंने सुनाया है।
मेरे इस बाल-कविके भी नव्य मानसमें
        राजहंस-मुखपर गान वही छाया है।
एक ही करुण स्वरद्वारा विश्व व्याप्त कर
        उच्च गायकोंके स्वरमें स्वर मिलाया है।
रागी[1] रह जगमें अजस्र अनुरागी रह
        आज उपहारमें अनूप राग[2] लाया है। १

यों ही सदा तेरे मंजु मानसमें राग रख
        अपने हियेमें अनुरणन[3] धरूँगा मैं।

---

१ प्रेमी, गानेवाला। २ प्रेम, गाना। ३ स्वराघातके पीछेकी ध्वनि।

अयुत दृगोंसे नैश[1] व्योमके समान देख
        दिशा-विदिशाके कर्ण-कुहर[2] भरूँगा मैं ।
रात बीत जायेगी प्रभात फिर होगा मंजु
        उसका सुवर्ण-प्रभा-सागर तरूँगा मैं ।
फूट निकलेगा पक्षियोंसे, कुसुमोंसे, उस
        तेरे स्वरका ही अभिनन्दन[3] करूँगा मैं । २

तुझको मुरलि, किस नन्दन-निकुंज-मध्य
        विशद पचासवीं[4] हवाने उपजाया है ।
जानें किस प्रेमकी उमसमें तपाकर ही
        तुझको अनादि शिल्प-कारने बनाया है ।
नीरव, परन्तु बोलते हुए, घुँघुरुओंसे
        तेरा पद जिस अन्तरिक्षने सजाया है ।
उसने दिया है उपहार इन आँसुओंका
        मालामें पिरोकर अनूप जिन्हें लाया है । ३

मौन-मंत्र-मुग्ध बना सुनता रहा हूँ सदा
        किन्तु जानता न भेद तेरे इस गानका ।
तेरा ही संगीत-वायु चलता दिगन्तसे है
        बहता त्रिलोकमें त्रिधारें स्रोत तानका ।
सुनकर तेरा गीत बुनकर भाव-जाल,
        चुनकर प्राण-पुष्प ले सुख प्रदानकों ।

---

१ रातका । २ कंदरा । ३ स्वागत । ३ अ-साधारण । ४ तीन धाराओंने । ५ प्राण-पुष्पके दान करनेकी क्रियाका सुख ।

मेरी भक्ति-भावना प्रसारती स्वपक्ष, जैसे
फैलता है पाल[1] चाल-युक्त जल-यानका। ४

सुन्दरता भागी जा रही थी मम जीवनसे
तेरा रम्य राग श्रुति-पुटमें समा गया।
जो कि मम चित्तकी कृपणता[2]के हेतु आज
दान-मस्त भूप-सा स-दान-हस्त आ गया।
परम प्रतप्त इस मानस-महीतलपै
जलद दयाका अपना ही छत्र छा गया।
मम रज[3]-हेतु बना प्रलय-पयोधर जो
मम तम[4]-हेतु वही ज्योति प्रकटा गया। ५

जब तू अनूप इन्द्र-चाप हो सजाती व्योम
आता रंग मेघमें, प्रसूनमें, सलिलमें।
और जब वादन-निरत[5] बन जाती, सखि!
होता गान पल्लवोंमें, वीचि[6]में, अनिलमें।
छेड़ती तू राग श्रुति-मधुर स-राग बन,
व्यापता फलोंमें स्वाद और स्नेह[7] तिलमें।
प्यारी, तेरे दासका कलेजा लीन होता तब
तेरे अनियन्त्रित दयासे भरे दिलमें। ६

श्रावणके घोर घन-मण्डलकी छाया देख
कामिनी[8]-सुगन्ध फैलती है यथा मन्द मन्द।

---

१ नावके ऊपरका कपड़ा। २ दारिद्र्य, दुर्बलता। ३ रजोगुण या रेणु ४ तमोगुण या अज्ञान। ५ बजती हुई। ६ तरंग। ७ तैल। ८ एक फूलदार वृक्ष।

जैसे शुभ्र शरद-सरोरुह-समाज-मध्य
 परिमल-सौरभ सुनाता कथा मन्द मन्द ।
या कि चंचरीक मधु-ऋतुमें प्रणयकी ज्यों
 कुंज-कलिकासे मनवाता प्रथा मन्द मन्द ।
तेरी गीति-जागृति जगतको जगाती हुई,
 उर-उदयाचलपै आती तथा मन्द मन्द । ७

प्रेम वह तेरा, योग-क्षेम यह मेरा, आज
 हिल-मिल खिलता प्रसून सौरभीले[1]-सा ।
जिसका विलास फैलता है अंतरिक्ष-मध्य
 कालिमा विहाय हो रहा है नभ नीला-सा ।
बरस सरसता चुकी है तू निशामें ऐसी
 घासका गलीचा हो गया है आज गीला-सा ।
आँसुओंसे ओस-बुन्द-सागरमें बिम्ब-युक्त
 रवि अरुणारुण[2] निशेश पड़ा पीला-सा । ८

रचके प्रथम अति उच्च शशि आनँदकी
 तारा-तारानायक-तरणि चमका दिया ।
तुमने छिपाया, पर फूलपै तितलियोंने
 चित्तका निहित[3] भेद प्रकट दिखा दिया ।
तो भी आज जाने क्यों समुत्थित[4] तरंगवती
 जीवन-नदीको उस ओर पलटा दिया ।

---

१ सुगंधित । २ लाल-लाल । ३ छिपा हुआ । ४ बाढ़पर आई हुई ।

गिरता अनूप कर्म-सलिल-प्रपात[1] जहाँ
विद्युतने सत्व-प्रकाश प्रकटा दिया । ९

चटक चटक पुष्प-राजि खिलती है मंजु,
मटक मटक भृंग-भीड़ मँड़राती है ।
भटक भटक बादलोंके परदेसे ज्योति,
छटक छटक क्षिति-मंडलपै छाती है ।
तेरी मुस्कराहटकी आहट स-राग वन
ऐसे अन्त-हीन दिवा-स्वप्न[2] दिखलाती है ।
परम प्रचंड पवि[3]-पावक-कथा क्या वहाँ
चंद्रके समेत रवि-छवि छिप जाती है । १०

गा गा कर गायन सुनाया तुझे जीवनमें
डोला द्वार द्वार उन्हीं गीतोंसे डुला हुआ ।
जागी स्वानुभूति भी उसीके साथ साथ ऐसी
पागल पुकारनेको विश्व था तुला हुआ ।
मेरे हृदयोदधि, तुम्हारे स्वर-अंबरके
क्षितिज[4]में व्यक्त केतु[5]-सदृश धुला हुआ ।
दिखला रहा है युग-जीवन-भवन-मध्य
किन महलोंका यह फाटक खुला हुआ ? ११

आनँदका अंबुधि उमड़ पड़ता है दिव्य,
जाता जिस ओर सो दिशा भी नृत्य करती ।

---

१ झरना । २ दिनके स्वप्न । ३ वज्र । ४ भूमि और आकाशका मिलन-स्थान । ५ पताका ।

दृष्टि सुषमाकी लोक-लोचनेंसे भूमिपर
नाचनेको प्रात[1]-अप्सरा-सी है उतरती ।
तार किरणोंके झनकार करते हैं मंजु
मींड[2]-सी मिलिन्द-मंडली है साँस भरती ।
किन्तु, मेरे राग-रक्त-हृदय-सरोरुहपै
ओस बनी वेदना पद-प्रहार करती । १२

तेरा स्वर फूटता विहंगमोंके कंठसे है
होता प्रतिध्वनित प्रसूनोंकी चटकमें ।
होकर प्रकाश फैल जाता है त्रिलोक-मध्य
काननमें, कुंजमें, गुफामें, पनघटमें ।
चौदहों भुवनमें महान प्राण-धारा बन
संचरित होता स्थान गुप्तमें, प्रकटमें ।
तेरे स्वरमें स्वर मिलाके गान गाता जब,
आता है गलेमें पै समाता रद-पट[3]में । १३

तेरा गान सुन सुन शरद-पयोद बना
रात-दिन घूमता था सौरभ-गगनमें ।
किन्तु, अब स्वीय-नाभि-निहित सुगंध सूँघ
छोड़ मेघतां[4]को मृगतां[5] ली है गहनमें ।
तेरे उन लोल लहरोंसे भरे गायनके
चित्रित हैं चित्र ऐसे अंबर-अँगन[6]में ।

---

१ सूर्य । २ स्वरकी एक विशेष गति । ३ होंठ । ४ मेघ-पन । ५ मृग-पन ।
६ आकाशके आँगनमें ।

तान सुनते ही संध्या मंद मुसकाती मंजु
आती है उषाकी हँसी अरुण[1]-वदनमें । १४

होकर प्रचालित तुम्हारे ही संगीतद्वारा
जीवन-प्रवाह बहता जो नस-नसमें ।
फूट निकला है भूमिसे जो तृण-गुल्म बन
होता है सुवासित जुहीमें, तामरस[2]में ।
जीवन-मरण-सरसीमें डोल डोल कर
प्राणकी तरंग न किसीके रही बसमें ।
जिससे प्रबल प्रभावित बन मेरा मन
नाचने लगा है अहमिति[3]की उमस[4]में । १५

यों ही तव गीति-लहरीके साथ-साथ सदा
बहता रहा हूँ, अभी और बहने दे तू ।
तेरे प्रेम-पाशमें बँधे ही बँधे खो गया हूँ
मुझको मुरलि, अपनेको लहने[5] दे तू ।
अपनी अनूप मूर्छनासे मुझे मुक्त कर
जाल स्वर-ग्रामका अलग रहने दे तू ।
स्वीय मंत्र-कीलितां[6] विहाय मुक्त मानसको
राग गहने दे, अनुराग कहने दे तू । १६

* * * *

---

१ सूर्यका रथवान । २ कमल । ३ अहंकार । ४ गर्मी । ५ पाने । ६ मंत्र-द्वारा बद्ध होनेकी अवस्था ।

तेरा स्वर-ग्राम[1] दिव्य लोकसे चला है सखि,
त्यागके अरण्य जहाँ धूप है न छाया है।
मानसके मध्यमें अनाहत[2] निनादने ही
हृदय-हृषीक[3]से इसे ही उपजाया है।
होती सत्य मुझको प्रतीति, किस कारणसे
सुमन-समूह अंतरंग-रंग लाया है।
क्यों कर तरंगमालाकुलित[4] तरंगिणीमें
संप्रति संगीत मुखरित[5] बन छाया है। १७

तेरी ध्वनि सुनकर रवि नभमें ही रुका,
छायामें अदोलित[6] बिलंगम[7] पड़े रहे।
पथकी प्रतप्त रेणु उड़के गिरी भी नहीं,
आतपमें क्षेत्र[8]-वृन्द हाँपते खड़े रहे।
अंबरमें इधर उधर खंड तोयदके
संस्थिर समीरसे वहींपै जकड़े रहे।
वे ही गान मेरे हृदयाचलसे टक्कर ले
होकर अनाहत[9] विषादमें गड़े रहे। १८

तेरा स्वर-ग्राम सान्ध्य-वारिद-सा राग-रक्त
मेरे सुख-स्वप्न-अंतराल-मध्य डोलता।
दिव्य भावनाओंसे स-चित्र चित्त-आलयका
अर्गला[10]-विहीन द्वार बार बार खोलता।

---

१ समूह। २ शरीरमें होनेवाला शब्द। ३ इन्द्रिय। ४ तरंगोंसे युक्त। ५ शब्द-युक्त। ६ बिना हिले-डुले। ७ सर्प। ८ खेत। ९ न कम पड़े हुए। १० बंधन, रोक।

खुल पड़ता है सर्व-वासना-सुरभि-कुंज
ककुभ[1]-श्रवण-कुहरोंमें सुधा घोलता ।
मेरी वृत्तियोंमें समालोक समा जाता तब
उड़ता न विषय-विहग भी न बोलता । १९

मंद-मंद संध्याका पटल पृथिवीपै गिरा,
धीरे धीरे धरती चरण रात आती है ।
गा-गाकर विहग-वरूथ[2] सब सो भी गये,
रजनी अकेली सारी सृष्टिको छिपाती है ।
रोके हुए साँस क्षण गिनते सितारे सभी,
निपट निचल निशिनाथ-छवि छाती है ।
सुनती उषा भी छिपी मेरु-कंदरामें पड़ी,
तू तो राग अपना अलापती ही जाती है । २०

रजनी प्रशान्त है, गगन तम-मंडित है,
तारक-प्रदीप[3] जलनेकी गंध आती है ।
जागृति निशीथके हृदयसे निकलकर
हिमकर-दीधिति[4]-समूहको जगाती है ।
लेके शान्ति-संवृत[5] सँदेश आ कहाँसे सखि,
मंत्र-यान-संस्थित[6] अनूप छवि छाती है ।
कर्ण-कुहरोंके, गूढ़ हृदय-गुफाको मम
रोम-कूपको भी प्रतिध्वनित बनाती है । २१

---

१ दिशा । २ झुंड । ३ तारोंके दीपक । ४ चन्द्रमाकी किरणें । ५ शान्तिसे ढका हुआ । ६ मंत्रपर सवार ।

तेरा गान मुझ तृणको है झंझावात[1]-सम
मेरी जगतीका सर्व-संहर[2] प्रलय है।
क्षणमें सुषुप्तिका सदन लुट जाता, अहो!
जिसमें निगूढ़ गूढ़ भावका निचय है।
तेरी मंजु हास-सुधा पान करनेके लिए
विचलित होता इस दासका हृदय है।
स्वर-सुषमाको भेंटते ही सब मेरे भाव
होते स्वप्न-तुल्य; स्वप्न ध्यानका विषय है। २२

तू ही हो निहित अन्तरंगै[3]में गँभीरतासे
चित्तकी प्रवृत्तियोंको प्रबल बनाती है।
एक मोहिनी-सी डालती है इन लोचनोंपै
हृदय-विपंचिका[4]पै नाच-नाच जाती है।
तू ही रंग-युक्त शिति[5]-अरुण-धवल बन
माया-जाल तोड़ निज मुखर[6] सुनाती है।
नाना नाम, नाना रूप, नाना सुख-दुःखवाले
नाना खेल मेरे मन-मृगको खेलाती है। २३

होती प्रसरित है अनन्त अन्तरिक्ष-मध्य
सारे लोक-लोकके धवल धाम धोनेको।
देती प्राण-धारा जो हृदयको हमारे गाति
बहती वही है सारी संसृति[7] डुबोनेको।

---

१ तेज़ हवा। २ सब नाश कर देनेवाला। ३ हृदय। ४ वीणा। ५ नीला। ६ शब्द। ७ संसार।

तेरी ध्वनि आती है पसारे हाथ मेरे पास
        मेरा राग तेरे चरणोंके ढिग ढोनेको।
सूर्य-चन्द्र-तारक-जटित यह बाँकी छवि
        पाई आज मैंने किसी खेलमें न खोनेको। २४

सकल युगोंमें, सभी देशोंमें निरन्तर ही
        तेरी ध्वनि-लहरी अनूप लहराती है।
दिनमें वसन्तके, विभावरीमें सावनकी,
        सौरभके, सारँगके[1] स्यन्दनपै आती है।
तेरी तान संग तेरे गानके सकल बोल
        बोलते हैं, "देखो, यह आती, वह जाती है"।
स-स्वर, परन्तु शब्द-हीन चरणोंसे चल
        आती तू अनादिसे अनन्तमें समाती है। २५

१ बादल, बिजली, पपीहा, कोयल, मोर, और चातक।

विराट-भ्रमण

इन्द्रनील-असित[1] महीके शिति[2] आसन पै
        किरण-विहीन अभिरामता वितरती।
घोर सुप्तिकी-सी शान्ति भूमिपै बिछाती हुई,
        आई वसुधामें अंधकार-भार भरती।
नीरवता भीम तमोमयता[3] असीम संग
        देखो यामिनी है अन्तरिक्षमें विचरती।
मानो चारों ओर मंत्र-लकुटी घुमाती हुई
        कोई अभिचारिणी[4] धराको सुप्त करती। १

सारे जीव-जन्तु वसुधाके तथा वारिधिके
        संज्ञा-हीनताके हुए अमित अधीन हैं।

---

१ इन्द्र-नील मणिके समान काली। २ नीले। ३ पूर्ण अन्धकार। ४ जादू-टोना करनेवाली।

विटप-वितान भी नितान्त शान्ति-संयते[1] हैं
        अचल-शिखाएँ ध्वान्त[2]-पीन हार्द[3]-हीन हैं।
नींदमें विहंग-वृन्द कूज पड़ते हैं स्वप्न,
        घूम रहे केवल उलूक ही अदीन हैं।
सोते कुसुमोंके लोचनोंसे ओस-बुन्द ढल
        पड़ते धरापै होते तममें विलीन हैं। २

ओसमयी नव्यता मिली है अब मारुतको
        अंबरमें हिम न तुहिन न तुषार है।
स्वच्छ अन्तरिक्षमें प्रकाशमान तारापति
        संयमसे करता असेत व्योम पार है।
मानो क्षीर-सिन्धु नील-घटमें भरा गया हो
        भूकी रचनाका ऐसा नभमें प्रसार है।
चारु शुभ्रतासे युक्त रोदसी हुई है दीप्त
        भूमि नभाकार[4] है, गगन धराकार[5] है। ३

इन तक पहुँच विलोके यदि कोई उन्हें
        तो वे बने तारक, सुधाकर न सविता।
नीड़[6] रच बैठे हैं रहस्यके विहंग-वृन्द
        रात-भर जिनसे सुछवि होती स्रविता[7]।
गणना करानेको इन्हींकी अभिरामतामें
        चंद्रता निशेश, अर्क[8] भूलता है रविता।

---

१ शान्ति-युक्त। २ बहुत अन्धकारवाले। ३ आनन्द। ४ आकाशके आकारवाला। ५ भूमिके आकारवाला। ६ घोंसला। ७ गिरती है। ८ सूर्य।

भूमिके सुधारक, गगनके प्रसाधक[1] हैं
स्वर्गके संगीत, अपवर्ग[2]की हैं कविता। ४

मैंने निज नेत्र खोल गगन विलोका जब
देख पड़े तारे महा मोदमें चमकते।
अमित असीम फैले अगम अनन्त तक
अपनी प्रभासे व्योम-मंडलको ढकते।
मन्द-मन्द मानसमें विचर मराल-वृन्द
विम्ब मान मौक्तिक उन्हींकी ओर तकते।
रत्न जान विपुल विगाहक[3] निशीथमें भी
अविरत डुबकी लगानेमें न थकते। ५

क्या ही मोद-दायिनी विभूति इन तारकोंकी
बिखरी हुई है किन्तु तो भी एक क्रम है।
शक्तिमें अनन्त है, अनन्त अंतरिक्ष-सम,
क्या ही मणि-कांचन-सुयोग अनुपम है।
ऐसी है प्रशान्त, न अशान्ति व्यापती हो जिसे,
क्यों है परतन्त्र? हेतु सोचना विषम[4] है।
इसके असीमताके मध्यमें न कोई वस्तु
जान पड़ती है, यही जानना अलम[5] है। ६

* * * *

---

१ शृंगार करनेवाले। २ मुक्ति। ३ गोताख़ोर। ४ कठिन। ५ पर्य्याप्त, काफी।

देखो, लखो, छाया-पथ[1] फटता द्विधा है यह,
शब्द मधु-वात[2]के विराव[3]से न कम है।
होता उत्तरोत्तर प्रवर्धमान अंबरमें
मानो बजी वायुकी विपंचिका[4] विषम है।
गगन-गवाक्ष[5]-मध्य रंग इन्द्र-तारक[6]के
होते भासमान ऐसा रूप अनुपम है।
स्यन्दन पधारता है यह जगदम्बिकाका
गरिमा अलौकिक अनूप मनोरम है। ७

एकशफ[7] चार जुते आते अति लाघवसे,
नालें वह सोलह कलानिधि द्वितीयाके।
उत्थित कशा[8] है पाक-शासन[9]-शरासनकी,
चारों पुच्छ शम्पा[10] हिम-छवि रमणीयाके।
वक्र किरणोंसे बनी ललित लगाम लोल
देख पड़े साज सभी कान्ति-कमनीयाके।
एकचक्र[11] स्यन्दन[12] तमारिका व्यपोहते[13] थे,
चार चक्र चक्रित त्रिलोक वन्दनीयाके। ८

भाव उठे मानसके धवल धरातलसे,
देखा उस परम अलौकिक सु-छविको।

---

१ ऐरावतकी गली। २ वसन्तकी हवा। ३ शब्द। ४ वीणा। ५ खिड़की। ६ इन्द्रधनुष। ७ घोड़ा। ८ चाबुक। ९ इन्द्र। १० बिजली। ११ एक पहियावाला। १२ रथ। १३ हराते।

जागी वह प्रतिभा प्रदान करती जो सदा
फूलको कठोरता या कोमलता पविको।
एक ही छटासे कल्पनामें प्राण लाती हुई,
परम पराजय दिलाती विधु-रविको।
आती आदि-शक्तिकी सवारी सुखकारी यह
आई आज करने कृतार्थ इस कविको। ९

आई आज करने सनाथ महामाया यह,
तारो! निज सुखद, प्रभाव प्रकटा दो तुम।
पाँचों तत्व! अपनी कठोरता विलुप्त करो
सप्त सिंधु! परुष[1] प्रवृत्तियाँ सुला दो तुम।
बोलो न विहंग! पशु-निकर! न डोलो आज
परम प्रशान्त अटवीमें[2] मौन छा दो तुम।
एक बार हृदय-हिमालय-समुच्चतासे[3]
मानस-निलीन दृश्य प्रकट दिखा दो तुम। १०

आई आज संसृति-रहस्य-मूर्ति अंबरसे
आई मोहनी जो मोह-महसे[4]-विदारिणी।
आई मानवीय-भाव-सागर-निवासिनी है,
आई है नृदेव-देव-मानस-विहारिणी।
देखो, परिवेष-परिवृत[5] रथ आया पास
जिसमें विराजी वही मुनि-मन-हारिणी।

---

१ कठोर। २ वन। ३ हिमालयके समान ऊँचे हृदयसे। ४ तड़क-भड़क।
५ घेरेसे घिरा हुआ।

डोली न समक्ष अक्ष[1]-मालिका उरस्थलपै,
बोली इस भाँति चक्रपाणि-चित्त-चारिणी । ११

" तूने ही अनूप भूरि-भूरि भक्ति-भावनासे
सेवासे प्रभूत[2] भूत-भावन[3] रिझाया है ।
तूने एकतन्त्र की है साधना सरस्वतीकी
जिसके प्रसाद-रूप यान यह आया है ।
चढ़कर देख विश्व-रूप उस ईश्वरका
जिसका स्वरूप तेरे चित्तमें समाया है ।
आज तक जिसको समाधि-साधनामें सिद्ध
देखा योगियोंने ठीक देख नहीं पाया है । " १२

*   *   *   *

सुनके निदेश मैं सवार हुआ स्यन्दनपै
छूके अम्ब-चरण प्रमोद हुआ मनमें ।
टूटे सभी बंधन प्रकृति-परतंत्रता[4]के
फूल उठा मोद रोम-रोम मेरे तनमें ।
प्राकृत[5] दशाके स्वप्न दिव्य देह पाने लगे,
जाने लगे भौतिक बलाक[6] स्वर्ग-घनमें ।
बागें[7] हिलते ही चारों बाजि उड़े आतुर हो
चन्द्र-किरणोंके पथ रथ ले गगनमें । १३

---

१ रुद्राक्ष । २ बहुत अधिक । ३ शंकर । ४ प्राकृतिक नियमोंपर निर्भरता
५ संसारी । ६ बगला । ७ रास ।

घहर-घहर ध्वनि चारों पहियोंसे उठी,
बागें तनीं, और अश्व-यान बढ़ने लगा।
फिरसे हयोंके पक्ष धवल-वितान बने,
श्वसन[1]-संगीत सानुराग कढ़ने लगा।
अश्वारूढ़ वायुमें सुमोंसे रोहिताश्व[2]-कण
निकले, गगन उलकाएँ[3] गढ़ने लगा।
चक्रोंकी रगड़से अनभ्र[4] वज्र-पात कर,
चमके अशनि[5], रथ ऊँचा चढ़ने लगा। १४

पार कर उन्नत हिमालय-शिखर यान,
वेधकर शुभ्र मेघ-मंडल बढ़ा जभी।
पूर्वमें प्रलम्ब हुआ प्रकट उषा-प्रकाश,
स्वर्ण-शैल मानो नील सिन्धुसे कढ़ा तभी।
नीचे महा तुहिन-वितान वसुधामें लसा,
सारा अन्तरिक्ष ऋक्ष[6]-वृन्दसे मढ़ा तभी।
छोड़कर पीछे भूमि, शैल, मेघ, विज्जु, यान
उच्च उच्चतर उच्चतम हो चढ़ा तभी। १५

नीचे अश्वयानके स-शैल सप्त-सिन्धु भूमि,
ऊपर स-तारक गगन भासमान था।
आगे चन्द्र-दीधिति-प्रकाश मार्ग-शोधक[7] था,
पीछे चिनगारियोंसे धूलित वितान था।

१ हवा। २ अग्नि। ३ टूटनेवाले तारे। ४ विना बादलोंके। ५ बिजलियाँ।
६ तारा। ७ रास्ता साफ करनेवाला या बतानेवाला।

मध्यमें पुँछारे[1] तारे छोड़ता चला यों रथ,
प्रस्तुत अनूप दृश्य ऐसा छविवान था।
विद्युत थी किन्तु मेघ-मंडल नहीं था वहाँ,
तारे थे परन्तु न कहीं भी आसमान था। १६

पीछे दृष्टि-गोचर था गोल चक्र पूषणका[2],
घूमता हुआ जो नील सम्पुटीमें चलता।
मानो जलयानके वितलै[3]-पृष्ठभाग-मध्य
आता चला फेन पीत-पिंड-सा उबलता।
उछल रहे थे धूम-केतु धुरियोंसे तीव्र,
यान-केतु-ताडित भचक्र[4] था उछलता।
मारुतका, मनका प्रवेग पड़ा पीछे जब
आगे चला वाजि-यूथ आतपं[5] उगलता। १७

चारों ओर देख पड़ा तारक-समूह शुभ्र,
जगमग जगमग ज्योति-जाल होता था।
कोई वक्र गतिसे पलायमान रोदसीमें,
कोई व्योम-नीड़[6]में मराल-सम सोता था।
कोई शृंग-युक्त बाल-चन्द्र-सा प्रकाशमान,
कोई ज्योति-रश्मियोंके मध्य अंग धोता था।
कोई भिड़ा एक-दूसरेको नष्ट करता था,
कोई डूबता था, कोई उसको डुबोता था। १८

---

१ पुच्छल तारे। २ सूर्य। ३ जल-तलसे नीचा। ४ आकाश-मंडल ५ घाम, प्रकाश, अग्नि। ६ घोंसला।

स्यन्दनके पथमें असंख्य सौर-मंडलोंकी
सीमा पड़ी, यान व्योम पार करता गया।
मैं भी आदिशक्ति-शक्ति-मोहित अनूप बन
अचरज अमित अपार करता गया।
पार हुए कितने भुवन करने हैं पार,
जाना किस लोकको विचार करता गया।
उधर अलौकिक महान यानै अंबिकाका
व्योममें अखंड अधिकार करता गया। १९

पार किया विपुल विशाल वायु-मंडल भी,
पार किया संस्थिर समीर-पथै क्रमसे।
छोड़ गये पीछे गोलें मंगल-बृहस्पतिके,
छोड़ गये पीछे कक्षें सारे एक दमसे।
और, सौर-संसृति-समुद्र-संतरण कर
आगे बढ़े काम रहा ज्योतिसे न तमसे।
आया एक लोक जो अलौकिक प्रकाशका था,
दूर, उस पार, परे प्राकृत नियमसे। २०

* * * *

देख पड़ा सामने रजत-रतनाकर जो
शुभ्र क्षीर-सागर-समान लहराता था।
भानुकी अयुत किरणोंसे हो प्रदीप्त जहाँ
एक हेम-शृंग जगमग छवि छाता था।

१ सूर्य्यके। २ रथ। ३ भूमिसे ४५ मील ऊपरकी हवा। ४ मंडल। ५ गोल।

विद्युत-प्रकाशकी शिलापै धाम संस्थित था,
नीचे स्वर्ण-मेघोंका बवडंर लखाता था ।
छायातक जिसकी न भूपर पहुँचती थी,
ऊपर समुच्च ऐसा केतु फहराता था । २१

स्यन्दन रुका तो नीचे उतर विलोका विश्व
फैली हुई सारी सृष्टि ललित लखाती थी ।
कोटि सौर मंडल प्रचंड क्रान्तिशाली बने
घूमते थे, अर्ध-नील-किरणें लुभाती थी ।
सारा तारा-मंडल नियमसे निबद्ध, किन्तु
गतिमें सभीके व्यतिक्रमतौं दिखाती थी ।
संसृति सकल शब्द-युक्त शब्द-हीनतासे
जाने किस अच्युतें धुरीपै चकराती थी । २२

गिरकर मैंने गहे पद जगदम्बिकाके,
बोली " तुझे एक और दृश्य दिखलाना है ।
तुझको अनूप ऐसी दृष्टि दे रही हूँ अभी
जिससे असम्भवको संभव बताना है ।
स्वस्थ बन अब तू विलोक विश्व-रूप जिसे
देवल, असित, व्यास, नारदने जाना है ।
देख वह अयुत-हृषीक-संहननें आज,
तुझे देखना है, मुझे तुझको दिखाना है । " २३

१ सुनहले मेघ । २ इन्फ्रा-वायोलेट (अँग्रेज़ी) । ३ नियमका न भी होना । ४ न खिसकनेवाली । ५ सैकड़ों हाथपाँव वाला शरीर ।

यह कह ले गई उधर उस मंदिरके
देखा वह रूप जिसे देखते अमर[1] हैं ।
आनन सहस्र लक्ष लोचन अयुत अंश
पद्म-शंख-शोभित अनेक पद-कर हैं ।
कोटि भानु होवें यदि उदित नभस्थलमें
तो भी उस ज्योतिके समक्ष न्यूनतर हैं ।
एक ठौर संस्थित सकल लोक संसृतिके
एक हैं अनेकधा विभाजित मगर हैं । २४

यह न निहारिकाएँ[2] झूलतीं अनन्त-मध्य
दाढ़ियाँ विरंचियोंकी वेद पढ़ते हुए ।
आतप-विमंडित दिगन्त-पट केशवोंके
देख पड़े नील देह-आभा मढ़ते हुए ।
टूटते न पुच्छल भगण[3] अंतरिक्ष-मध्य,
ईशों[4]के स-मणि फणि-वृन्द कढ़ते हुए ।
प्रेम-प्रणिधेय[5] अप्रमेय आदि-देव-मध्य
भूत थे भ्रमित अविसंख्य[6] बढ़ते हुए । २५

अक्षर[7] परम ज्ञेय[8] विश्वका निधान वह,
अव्यय[9], अनूप है, सनातन स्वरूप है ।
निपट-निबद्ध आदि-अंत-अवसानसे भी
सूर्य-चंद्र नेत्र हैं, अनल मुख-रूप है ।

---

१ देवता । २ प्रकाशके पुंज जो अन्तरिक्षमें निराधार तैरते हैं । ३ तारा । ४ महादेव (बहुवचन) । ५ प्रेमद्वारा प्राप्त होनेवाले । ६ असंख्य । ७ न नाश होनेवाला । ८ जानने योग्य । ९ न नाश होनेवाला ।

अपने प्रतापसे त्रिलोकको प्रदीप्त कर
बनता कुलिश किन्तु हृदय अपूप[1] है।
होते हैं त्रिदेव भी व्यथित देख-देख जिसे
ऐसा भीति-दायक विशाल विश्व-रूप है। २६

भीम व्यत्त[2] आनन अनन्त अन्तरिक्ष-मध्य
ऐसा सर्वतोमुख कि सृष्टि ही समाई थी।
कालानल-संन्निभ[3] कराल दन्त-पंक्तिपर
त्रसित त्रिलोक चाबनेकी शक्ति छाई थी।
दौड़ पड़ते हैं दीप देखके पतंग जैसे,
वैसे कंठ-कूपको त्रिलोकी उठ धाई थी।
जैसे नदी-निकर निलीन होते नीरधिमें
संसृति तथैव नाश-हेतु समुहाई थी। २७

मैं तो हीन-संज्ञ[4] हो गिरा पदोंपै अंबिकाके
देख उस परम समुज्ज्वल वदनको।
अनल अशनि अब्ज[5] अर्क[6]से अधिकतर
आभा लख आननकी खेद हुआ मनको।
" श्रीहरि ! नमोस्तु ते, नमोस्तु ते, प्रसीद[7], देव ! "
हे हे विश्वनायक ! सनाथ किया जनको।
आज तो स्व-नाम-धन्य सेवक ' अनूप ' को तू
चन्द्रमा चकोरको तू वारिद गहनको "। २८

---

१ मालपुवा-सा कोमल। २ फैला हुआ। ३ सदृश। ४ बेहोश। ५ चन्द्रमा ६ सूर्य। ७ प्रसन्न हो।

दंडी-प्रयाण

टूटा शीस-फूल वारुणीका चरमाचलपै
रजनी-प्रकाशकी शिरायें[1] खिलने लगीं ।
प्रथमा दिशासे यामिनीकी रसनायें[2] बढ़ीं
ग्रास पश्चिमीय सभ्यताका गिलने[3] लगीं ।
देखो अस्तमान[4] भानुमान[5]की निहारिकायें
होकर विचूर्ण वीचियोंमें मिलने लगीं ।
पिंगल प्रभासे भासे[6] अचल-अगोंके[7] शीस
शंकरीय जटिल जटायें हिलने लगीं । १

नीर नदियोंका साँझ देख कुछ धीमा पड़ा
किन्तु देख पड़ता तड़ाग सिहरा हुआ ।

---

१ कलियाँ । २ जिह्वाएँ ३ निगलने । ४ अस्त होता हुआ । ५ सूर्य । ६ प्रकाशित हुए । ७ पर्वतपरके वृक्ष ।

व्योमसे सघन घन-मंडल बनाता हुआ
ऊपर नगरके धुएँका कुहरा हुआ ।
ढलक रहा है चरमाचल शिलापै रवि
अंतरमें जिसके तमिस्र[1] बिखरा हुआ ।
जान पड़ता है कि गिरीशकी[2] भुजापै धरा
पूषणके[3] प्यालेमें हलाहल भरा हुआ । २

मुदित बनाता हुआ सकल निशाचरोंको
घोर अन्धकार-धूम भीति-भूति[4] राँचेगा ।
बिखरे हुए जो अस्थि-पंजर समान तारे
उनमें स्वभाग्यके सुभाग्य-अंक बाँचेगा ।
सूर्य हुआ चिताके अंगारके समान मंद
देखके निधन कौन अमृत न जाँचेगा ?
ज्ञात हो रहा है पाश्चिमात्य प्रेत-देहलीपै
उग्र प्राच्य-कालका कपाली आज नाचेगा । ३

चाट गई लोहू जो लपक हत-वासरका
अंधकार-रसना अतीव बृहती[5] हुई ।
धोने लगी प्रकृति कपोल ओस-आँसुओंसे
रोने लगी आशा[6] भी ललाट धुनती हुई ।
चटक रही है चटकाली दारु[7]-मेद-तुल्य
क्षितिज विराजमान लाल युवती हुई ।

१ अँधेरा । २ शिव । ३ सूर्य । ४ भयका अतिशय । ५ बड़ी । ६ दिशा । ७ लकड़ी ।

एक बार और चरमाचल-चितापै आज
दग्ध हुआ सूर्य, संध्या-सुन्दरी सती हुई । ४

*   *   *

किन्तु यहाँ धीर-नीर साबरमतीके तीर
गाँधी कर्मवीर देश-ध्यानमें समाया है ।
चारों ओर आश्रम-निवासी सरदार शूर,
साधु सुविचारने सचिव-पद पाया है ।
आज कुछ और ही उमंग अंग-अंगमें है
ईशको स्वकीय ईशता[1]का ध्यान आया है ।
भाल भगवानकी कृपाका है किरीट मंजु
सीस क्षमापतिकी क्षमा[2]का छत्र छाया है । ५

रहती सदैव देश-चिन्ता चाकरीमें सदा
सेवा करनेको साथ दीनता अरुद्रा[3] है ।
घोर यम-नियम कठोर द्वारपाल-सम
शक्ति वीर-बाहुओंमें साहस-समुद्रा है ।
भ्राजमान दुर्गमें अहिंसाके विराजमान
राजनेको मंजु आसनी ही एक क्षुद्रा है ।
मीलित सुनेत्र, ध्यान-कीलित कलेवर है
वलित[4] ललाट और मौन मुख-मुद्रा है । ६

धन है चरित्र, पास धरणी पवित्रताकी
मनमें मुदा[5] में राम-नामका सहारा है ।

१ ईश्वरता । २ कृपा, करुणा । ३ शान्त । ४ लकीरें पड़ा हुआ । ५ सदैव ।

तोष-निधि अचल अटूट हृदयस्थलमें
सत्य मोद-दायी चित्त-सेवक दुलारा है।
वीर है असहयोग-संगरका तू ही एक
तू ही शान्ति-व्योमका उदीयमान तारा है।
भारत महीका मोद मोहन ! महान् तू ही
भारत-महीका तू सपूत पूत प्यारा है। ७

संध्या हो गई है किन्तु संध्या-से त्रिरंग नेत्र
ईश-वन्दनाका ध्यान भंग कर प्रकटे।
भारतीय भूकी भारतीयताकी भावनासे
देश-हित-चिन्ता-अनुषंगी कर प्रकटे।
मानो समतासे अंतरंग-रंगभूमि-मध्य
ममता हराके अभी जंग कर प्रकटे।
मानस-समुद्रसे स्वतंत्रताका रत्न खोज
दोनों रत्न-पारखी उमंग कर प्रकटे। ८

सामने खड़े जो वीर भट अनुशासनको
धीर शान्ति-सैनिक लगे यों हाथ जोड़ने।
देख युग पूषण उदित उदयाचलपै
सिद्ध लगे अंजलि-निबद्ध नीर छोड़ने।
कंटकित होने लगी देह लख लोचनोंको
देख दृश्य नारियाँ तृणोंको लगीं तोड़ने।

१ साथ। २ रोमांच-युक्त।

पुण्य-प्रभा उज्ज्वल प्रकट हुई आननपै
पाप-पारतन्त्र्यका मलीन मुख मोड़ने। ९

दीन-हीन दुखित तृणोंसे झुलसे थे घोर
दुःसह कुसभ्यताके तापकी थी तर्जना।
निहत पड़े थे मन-मोर क्लेश-काननमें
व्यथित वराकं[1] थे विलोक वारि-वर्जना।
दावासे दमनके अवनि हुई आवाँ[2]सम
करते स-त्रास जीव जीवन-विसर्जना।
देख दशा पावसके प्रथम पयोद-सम
करने लगे यों कर्मवीर धीर गर्जना। १०

* * * *

"अब न सहेगा न सहेगा यातनाएँ देश
अब न रहेगी न रहेगी परतन्त्रता।
अब न बचेंगे पुण्य-भूमिके दुराव-भाव
अब न चलेगी पिशुनों[3]की षडयन्त्रता।
अंतिम यही है दिन, अंतिम यही है निशा
प्रातमें अवश्य ही मरेगी निजतंत्रता।
श्रेयस यही है हो स्वराज्य अवनीतलपै
प्रेयस यही है भोगे भारत स्वतंत्रता। ११

"पथ भारतीयोंका निपट अवरुद्ध आज
कंटक उखाड़ना है, सुमन बिछाना है।

---
१ बेचारे। २ ईंटें पकानेका भट्टा। ३ दुष्ट।

डालना है जीवनकी नाव भीति-भौंर-मध्य
        कालके भी गालसे निकाल ध्येय लाना है।
जब लौं न मिलती स्वतंत्रता अनूप हमें
        तब लौं कुमंडल[१]-खमंडले[२] मिलाना है।
कूदे जो समुद्रमें तो रत्न ही निकालना है
        उछले गगनमें तो तारे तोड़ लाना है। १२

" अब न रुकेंगे न रुकेंगे न रुकेंगे हम,
        टूट गिरें ऋक्ष[३], अंतरिक्ष चाहे फट जाय।
प्राप्त करना है सिद्ध-साबर[४]-स्वतंत्र-मंत्र
        मेरु हो सचल चाहे मंदर उलट जाय।
व्यापी आज दीनोंकी पुकार चारों ओर घोर
        क्रोश[५] हुआ क्रूर नींद अब तो उचट जाय।
करनी चढ़ाई है भयंकर असभ्यतापे
        हो जो भयभीत शीघ्र सामनेसे हट जाय। १३

" होवे क्रांति ऐसी कि समूह देश-शोषकोंके
        डर जायँ हूहमें, बिडर जायँ धावामें।
दीनोंकी कराल-आह-ज्वालमें विदग्ध हों वे
        दग्ध हों द्विषद स्वीय पापके पजावों[६]में।
फट जाय तिमिर प्रभातमें उषासे यथा
        कट जाय कलुष तुम्हारे एक कावाँ[७]में।

---

१ पृथ्वी। २ आकाश। ३ तारे। ४ एक प्रकारका मंत्र। ५ शब्द।
६ आवा। ७ दौड़।

नारकीय नीतिको अनल सत्याग्रहका दो
जल तो रहा है देश क्लेश-दुख-दावामें । १४

" आश्रम-निवासिनी सकल ललनायें माँयें
बहनें, हमें है पशुतासे युद्ध ठानना ।
लड़ना तुम्हें भी सत्याग्रहकी लड़ाई घोर
अवसर आते निज धर्म पहचानना ।
हम सब रणमें मरेंगे या विजय लेंगे
तुमसे कहे जो कि भगे तो मत मानना ।
पीछे पैर देंगे न स्वराज्य बिना पाये हुए
आश्रममें लौटे जो पिशाच उसे मानना । १५

" या तो हम सकल स्वतंत्र होंगे भारतमें
या कि आमरण[1] कारागारमें ही वास है ।
होता मुंड मंडित विजय वैजयन्तिकासे
या तो रुंड सड़ता समुद्रके ही पास है ।
बहनो ! सुताओ ! वीर माँओ ! अंगनाओ ! जाओ,
भिड़ना हमें, तो तुम्हें लड़ना स-हास है ।
या तो हम लौटेंगे अहिंसा-युद्ध जीतके ही
या कि जन्म-भरका हमारा वन-वास है "। १६

अखिल दिशायें व्यनुनादिते[2] बनाती हुई
निकली अनूप उक्त व्याहृति[3] त्रिलम्पमानें[4] ।

१ मरने तक । २ शब्दयुक्त । ३ वाणी । ४ शीघ्रगामिनी ।

जिसका महान पवमान[1]-यान-वेग देख
दिल्ली हुई वेपमान, शिमला प्रकम्पमान ।
सागरमें जाते देश-द्रव्य-अपहारी पोत
उच्छल तरंगोंमें झटिति हुए झम्पमान ।
शंकित विदेश सुनते ही महावीर-हाँक
जैसे यातुधानी राजधानी हुई कम्पमान । १७

* * * *

आश्रम-निवासी गए, आश्रम-निवासिनी भी,
सूर्य गए, संध्या गई अपने निवेशमें ।
आया अन्धकार, आई रजनी निशीथ-संग,
तारों साथ आया चन्द्र अम्बर-प्रदेशमें ।
ऐसा आवागमन विलोक कौन ज्ञानी कभी
चूकेगा समाधि-सिद्धि-सागर-प्रवेशमें ।
कौन यह निपट निलीन ध्यान-धारणामें
अम्बर[2] पलंगके पड़ा है एक देशमें ? । १८

तारापति सहित स्वकीय तारा-मंडलके
उदित हुआ है आज क्षितिज प्रतीचीमें ।
सेवकों-समेत कर्मवीर है शयान[3] यहाँ
व्यापा शैत्य[4] रोदसी अनूप ओस-सींचीमें ।
मचल गया है मन, अचल हुआ है ध्यान,
सचल हुआ है कवि कल्पनाकी वीचीमें ।

---

१ हवाकी सवारीका वेग । २ कपड़ा । ३ लेटा हुआ । ४ शीतलता ।

एक-साथ एक-सौ-चवालिस चलाये अस्त्र
प्रकट हुई यों पाप-पालित पिशाची आज ।
निपट निहत्थे मत्थे उन्नत किये ही चले
धन्य, धीरताने वीरताकी रेख खाँची आज ।
राजनीति भोंड़ी यह, निपट निगोड़ी यह,
घामड़ोंकी घोड़ी यह नंग नाच नाची आज । २२

चलने लगा है सारे देशमें दमन-चक्र
ढलने लगा है ग्राम-ग्राम कारागारमें ।
फलने लगा है पाप-वृक्ष अत्याचार-फल
जलने लगा है सत्य-न्याय कुविचारमें ।
बन्दी बने इतने कि टूटी जेलकी भी भीति,
छूटी जेलकी भी भीति[1] प्रबल प्रचारमें ।
देश मुक्त होके निज ओर दौड़ आता देख
जागे कर्मवीर जनताके हाहाकारमें । २३

* * * *

आँख खोल देखा पूर्व ओर तो उषाकी प्रभा
छाई गौर-रूपिणी प्रसन्न हो गगनमें ।
मानो सती-संध्या[2] वही, जन्म ले समोद फिर,
प्रकट हुई हो शैलराज[3]के सदनमें ।
ब्रह्म-काल परम विशाल सिद्धि-मूल जान
अंग भरे पुलक, उमंग भरे मनमें ।

१ दीवार । २ देखो चौथे नम्बरका पद्य । ३ हिमालय ।

उद्यत प्रयाणको अनूप कर्मवीर हुए,
‘ जागो सभी सैनिक, सवेग चलो रनमें ’ । २४

प्राचीकी ललाम छवि-धाम लालिमाके व्याज
मानों बाल-सूर्यसे[1] सिंदूर माँग लाई है ।
बिखरा पड़ा जो इस आश्रम-थलीके थाल
ओसका ही अक्षत-समूह सुखदाई है ।
देख पड़ती है जो उषाकी मंजु पौ भी यह,
लौ भी यह ललित कपूरकी लगाई है ।
पुण्यके प्रभात, कर्मवीरकी विदाके हेतु
मातृ-भूमिने ही आज आरती सजाई है । २५

चहक रही है चटकाली[2] गीत गाती हुई
मंगल-सँगीत पादपोंके पात-पातमें ।
सुखद समीर सानुकूल बहनेसे मंजु
छाई है प्रफुल्लता दृगों-से जल-जातमें ।
आ गई सजगता अनूप रोम-रोमपर
चक्रवाक चंचल चपल चले प्रातमें ।
मानो मातृ-भूमि ही सदेह देश-नायकके
आई साज रणके सजाने गात-गातमें । २६

तीन बलै[3] बलित ललित मंजु भाल-मध्य
रोचन बँधूर्क[4]-मान-मोचन लगा हुआ ।

---

१ निकलता हुआ सूर्य । २ प्रभात-पक्षी । ३ रेखा । ४ एक लाल पुष्प ।

फूल उठा तरल तरंगित सरोवरमें
रक्त वारि-जात उषा रंगमें रँगा हुआ।
असुर-अशान्ति सुर-शान्तिका प्रसार कर
बैठा सोम-अंक मानो मंगल जगा हुआ।
किंवा कर्मवीरके ललाट उदयाचलपै
शोभित स्वतंत्रताका पूषण उगा हुआ। २७

हाथमें लकुट, सिर पागका मुकुट मंजु
अस्त्र हैं न शस्त्र, किन्तु हिम्मत सवाई है।
रक्त-रंग-माला लम्बमान जो उरःस्थलपै
सिद्धिने विजय-वैजयन्ती[1] पहनाई है।
घोर परतंत्रतापै, पापपै, पिशुनतापै
आज मातृ-भूमि-हेतु कर दी चढ़ाई है।
भारत रणस्थल, अहिंसा-सत्य साधन हैं,
नेता कर्मवीर, सत्याग्रहकी लड़ाई है। २८

सजल विलोचनोंका परम पुनीत नीर
पुलकित रोम-कुश लेके मोद-मय हो।
बोली मातृ-भूमि कंठ आश्रम-सरस्वतीके
"आज यही देती हूँ असीस मैं सदय हो।
ए रे बीर बाँकुड़े लड़ैते, धीर, साहसी तू,
धर्म-वर्म[2]-धारी, कर्म-चारी तू अभय हो।

---

१ माला। २ कवच।

मंगल हो पथमें, अमंगल न आवें पास,
साधन हों सफल, रण-स्थलमें जय हो। २९

दौड़े पूर्व-पुरुष प्रयाण-दृश्य देखनेको
बोले प्रह्लाद ‘ सत्याग्रहकी विजय हो ’।
व्योमसे दिलीप-अम्बरीष-हरिश्चन्द्र बोले
‘ गो-पच, अभक्त, अत्याचारियोंकी क्षय हो ’।
शून्यसे अशून्यमें पधार भगवान् बुद्ध
बोले, ‘ भाव हिंसाका अहिंसा-मध्य लय हो ’।
‘ शत्रु-पराजय हो,’ पुकार गोखलेने कहा,
केसरी[1]से किलक तिलक बोले, ‘ जय हो ’। ३०

जयजयकार-ध्वनि मध्य कर्मवीर चले,
धीर चले अंतरिक्ष-सुमन-प्रपातमें।
भक्ति-युक्त सजके समूह संग-संग चले
मंगल-मरंद[2]-भट-भृंग चले प्रातमें।
झोंके चले वायुके अनोखे गंध-भारयुक्त
देश-हित-खोजी चंचरीक चले व्रातमें।
भारतसे भभर अभागियोंके भाग आज
भागे भेद-भाव भूरि नरक-निखात[3]में। ३१

ज्यों ही पड़ा प्रथित प्रथम पद भूतलपै
डगमग डोली भूमि, तल लचने लगा।

---

१ सिंह और मराठीका सुप्रसिद्ध पत्र। २ पराग। ३ खाई।

डोले सप्त-सिन्धु-मध्य द्वीपके समूह सारे
देश-द्रोहियोंको प्रलै-काल जँचने लगा ।
खलभल-सहित स-संभ्रमें विपक्ष-व्यूह
व्यर्थ बचनेका उपचार रचने लगा ।
अग्नि-सी लगी है, वडवाग्नि-सी लगी है, क्यों
दवाग्नि-सी लगी है, हाहाकार मचने लगा । ३२

साहसकी धारा निराधारा बहती है यहाँ
और वहाँ अश्रुधारा-धावन अपार है ।
देश-दुख-दावा यहाँ धधक रहा है घोर
आपदाका आवा वहाँ कालानलाकार है ।
हो रही यहाँ है 'पाहि, पाहि' दीन-दुखियोंमें
वहाँ मुखियोंमें 'त्राहि, त्राहि' की पुकार है ।
देश हाहाकार है, विदेश हाहाकार है,
यहाँ भी हाहाकार है, वहाँ भी हाहाकार है । ३३

गाँधी चढ़ा दाँडीपै उदंडी वृत्ति धारे, या कि
आँधी चली प्रबल प्रचंड आसमानको ।
या कि दावानल ही गहनसे बवंडर-सा
ऊँचा उठा व्योममें छिपाते भासमानको ।
अथवा विपक्षियोंका सुयश-समुद्र देख,
दौड़ा बड़वानल अधीर नीर-पानको ।

१ हकाबका ।

चक्र चक्र-पाणिका चला कुचक्रियोंपै, या कि
पवन-कुमार चला लंकाके प्रयानको। ३४

*　　　*　　　*

होते ही प्रभात बढ़े पश्चिम दिशाकी ओर
छाया लम्बमान पड़ी जाकर विदेशपर।
पीछे दिनकरके अपार कर संग चले
जीतको अनीति-अंधकार-अवशेषपर।
सिन्धु तीर दमके लवण-कण आतपमें
चमके यथैव भाग्य-अंक भाल-देशपर।
ऐसे पुण्य-प्रातमें सकल नर-नारी चले
होने न्यवछावर भटोंके वीर वेशपर। ३५

भीति त्याग मृत्युकी अशीति[२] सैनिकोंका वृन्द
मत्त-करि-निकर-विलास[३] व्यस्त करता।
आगे बढ़ा ज्यों ही शक्ति-साहस-समेत वह
भारतीय भूकी भीरुताको ग्रस्त करता।
आकर सवेग मिला जनता-समूह उसे
दौड़ा अभिनन्दन निबद्ध-हस्त करता।
आतुर विलोक कर्मवीर एक बार और
बोला धर्मधीर कूट-नीति त्रस्त करता—। ३६

"बादमें तुम्हें भी सजना है यही साज वीर!
और इसी भाँति सज करना चढ़ाई है।

---

१ दुष्टों। २ अस्सी। ३ शोभा।

लूटना है हमको नमक-कर तोड़-तोड़
देश-शोषकोंकी नीति-रहित कमाई है।
दृष्टि बँध जाय दृष्टि-बंधन किया है वह
कान हों वधिर ऐसी दुंदुभी बजाई है।
अस्त्र है अहिंसा, सत्य शस्त्र, क्षेत्र भारत है,
सैनिक हैं आप, सत्याग्रहकी लड़ाई है। ३७

" शीघ्र लग जाओ कार्य-क्रम-रचनामें सभी
काम करो अपना, खलोंसे कहो ताने दो।
आते ही समय आपसे ही अस्त-व्यस्त होगा
देशमें दमन-चक्र उनको चलाने दो।
दब सकती ही नहीं भावना स्वतन्त्रताकी
भारत-महीको कारागार बन जाने दो।
सबल स्वराजका समरिण चला है आज
प्रबल प्रचंड पाप-पादप गिराने दो। ३८

" वदन-वदनसे स्वराज्यकी ही माँग कढ़े
सदन-सदनसे निरुद्यम निगोड़ा जाय।
होवे घर घर घर-घर चरखेकी ध्वनि
हृदय-हृदयसे ज्वँराका[1] भय छोड़ा जाय।
देखके तुम्हारी मानवोचित महत्ता यह
पड़ पशुताकी पीठपर एक कोड़ा जाय।

१ मृत्यु।

डगर-डगर-मध्य वसन विदेशी जलें
नगर-नगरमें नमक-कर तोड़ा जाय । ३९

" अब न चलेगी कोई चाल परतन्त्रताकी
भारतीय भूमिपै स्वतन्त्र-मन्त्र छावेगा ।
देश-रक्त-शोषण अशेष बन्द होगा अब
सत्य ही लड़े तो शीघ्र सत्ययुग आवेगा ।
अंतिम संदेश देश-वासी नर-नारी सुनो,
संगठन सबका गजब जब ढावेगा ।
हेले[1] कर देनेसे खलोंका खेल होगा भंग
जेल भर देनेसे स्वराज्य मिल जावेगा । ४०

" देखकर देशकी भयंकर दरिद्रता मैं
तड़प रहा हूँ रात-दिन दुःख पाता हूँ ।
शीलों[2] माँगनेसे शिला मिलती जहाँ है आज
ऐसे अधमोंको काल-चक्रपै चढ़ाता हूँ ।
अब न सहेगा देश-दुख परतन्त्रताका
विजित न होवे ऐसा व्यूह रचवाता हूँ ।
आ रहा स्वराज्य आज भारत-वसुन्धरामें
स्वागतके हेतु अग्रगामी बना जाता हूँ " । ४१

जा तू वीर बाँकुड़े अहिंसा-धर्म-धारी धीर
सफल असहयोग-संगर[3]-विजेता जा ।

---
१ धावा । २ खेतमें गिरे हुए अन्न-कण । ३ युद्ध ।

लेता जा सकल मनुजोंकी कामनाका फल
उत्तम-चरित्र उपदेश हमें देता जा ।
बहने न पायेगी पवन प्रातिकूल अब
शासन-समुद्रमें स्वदेश-नाव खेता जा ।
नेता जा अखिल भारतीय जनताका शीघ्र
वीर ! राजनीति-रंगमंच-अभिनेता जा । ४२

शंकर दें सुफल सकल सिद्धि-कामनाका
शासन त्रिलोकका सुरेश अविचल दें ।
विधि दें महान वरदान वीर्य-विक्रमका
शक्तिके निधान बजरंग-बली बल दें ।
राम रमणीयता दें, कृष्ण कमनीयता दें,
अम्बिका भवानी शत्रु-सैन्य सारी मल दें ।
तेरे भुज-दंडपै घमंड वीरताको वीर !
युद्ध-श्रीगणेश ! श्रीगणेश चारों फल दें । ४३

* * * *

ए हो आसमानमें सतत[1] धावमान[2] मेघ,
अपथ तुम्हारा पथ, विपथ चढ़ाई है ।
ए हो तुंग तरल तरंग-राशि अंबुधिकी
अगति तुम्हारी गति, प्रगति सवाई है ।
ए हो उच्च अचल, सघन वन आदि सारे
शीघ्र हो सजग अभी छिड़ती लड़ाई है ।

१ सदा । २ दौड़ते हुए ।

भारतको सकल स्वतन्त्र साधना दो आज
भारतने सबको स्वतन्त्रता दिलाई है। ४४

धन्य देवि! जयति स्वतंत्रते! अनूप अम्ब!
तू ही अवलम्ब रही देती अवसरसे।
आज तक तेरी ही कृपासे सत्य जीवित है
मिलते न सुफल स्वराज्यके अपर[1]से।
तूने आर्य-संतति-समाजको बताया पथ
भूमिपै सम्हाला है उतर व्योमपरसे।
भारत-धराको निज हासका प्रकाश देती
हँसती रही है तू हिमालय-शिखरसे। ४५

---

१ दूसरे (के द्वारा)।

प्रकीर्ण पद्य

(१) प्रार्थना

विधिवत विश्वके विशाल विद्या-मंदिरमें
        बैठकर ज्ञानका सुधा-रस पिया करूँ।
छंदकी प्रबंध-रचनासे हुलसाऊँ उसे
        उसके लिए ही आमरण मैं जिया करूँ।
भव्य भावनाका भोग आगे रख नम्रतासे
        दीप व्यंग्यका औ धूप ध्वनिकी दिया करूँ।
काव्यके प्रसूनोंको चढ़ाकर मनाऊँ उसे,
        यों ही सदा शारदाका वंदन किया करूँ।

(२) मदन-प्रयाण

सज्जित[1] अनूप मंजु शिञ्जिनी[2] मिलिन्दकी है
        कुसुम-शरासन है, शायक सुमनका।

---

१ चढ़ी हुई। २ प्रत्यंचा।

आगे राजता है चंद्र मंजुल मशाल-सम
पीछे चारु चामर वसन्तके पवनका।
दायें है कटाक्ष और बायें गीत गाती रति
बीचमें विराजा महाराजा त्रिभुवनका।
सुर औ' असुर सब हार बैठते हैं जब
मथता मनोभव महोदधि है मनका।

(३) रामायणका सारांश

धीर हुए क्षणमें अधीर यामदग्न्य-से भी
वीर बड़े बालि-से बली भी कुचले गये।
लीला ऐसी रच दी समक्ष जगतीतलके
काटे, भूमि, पाटे यातुधान मसले गये।
कंठसे लगानेको जनक-नंदिनीका कंठ
किये छिन्न-भिन्न दशकंठके गले गये।
भूमिसे निकल सीता भूमिमें समाई, और
व्योमसे उतर राम व्योमको चले गये।

(४) माया और ब्रह्म

नीचे एक शेष है युगल वल्लरीकी मूल
नाग-भोग१-शाखा चारों ओर है फटी हुई।
व्योम मध्य तारोंका वितान सुमनों-सा लसा
बैठी भ्रमरी-सी है दिगंगना२ डटी हुई।

---

१ फन। २ दिशा-रूपी स्त्रियाँ।

सूर्य-चंद्र फल-से फले हैं सुधा-सार भरे
        सिद्धियाँ पड़ी हैं कृपा-वायुसे पटी हुई।
फैली हुई आज भी है भूके मान-दंडपर
        सीता-राम-कीर्ति-लतिकाएँ लिपटी हुई।

(५) गाँधी-गौरव

पश्चिमके तमका प्रसार पृथिवीपै देख
        पूर्वमें सुभाग्यका सितारा बन चमका।
शाका हुआ ऐसा कि सनाका पड़ा भूतलमें
        नाका रुका हिंसाका, धड़ाका रुका बमका।
ज्ञान-गुदड़ीसे सत्याग्रहका निकाला चक्र
        धाम-धाम धैर्यको बँधाके धीर धमका।
कर्मवीर गाँधी! कोई कर्मके भरोसे रहे,
        भारतकी भूमिको भरोसा तेरे दमका।

(६) भगवान बुद्ध

मूक प्राणियोंकी वेदनाकी जो अचूक आह
        होके बावदूक[1] धर्म-युद्ध बन आ गई।
हठ करनेको हठ-योगके दुराग्रहसे
        शठ हरनेको प्रीति शुद्ध बन आ गई।
सकल समाजको विपथ लख आतुर हो
        ज्योति अंधकारके विरुद्ध बन आ गई।

---

१ वाचाल।

बुद्ध बन आ गई सहानुभूति संसृतिकी
भूकी सुप्त[1] करुणा प्रबुद्ध बन आ गई ।

सुनकर दीनोंकी पुकार जगतीतलमें
अंतरिक्ष-देव-समाहूत[2] बन प्रकटे ।
फिरसे धराको कर्म-ज्ञानका प्रकाश देने
सूर्यसे प्रभाकर अकूत[3] बन प्रकटे ।
शीलका स्वभावका दिखाकर अनूप रूप
आस्रवके[4] ज्ञानसे प्रपूत बन प्रकटे ।
बार-बार प्रकटे महीमें, किन्तु आज आप
एक बार और धर्म-दूत बन प्रकटे ।

(७) पिंजर-बद्ध केसरी

याद है कि तुझमें कभी था रोष रुद्रका-सा
चीड़-सा ही चीड़ता चमूरुका[5] भी चाम था ।
इस पिंजड़ेमें नहीं जंगलोंमें शासन था
इन महलोंमें न, दरीमें तेरा धाम था ।
एक गज-गंड-गामिनी[6] भी सहगामिनी थी
यामिनीमें दामिनीका गमन गुलाम था ।
सोये हुए तुझको जगाना एक वीरता थी
जागे हुए तुझको सुलाना एक काम था ।

---

१ जागृत । २ बुलाए हुए । ३ अमित । ४ बौद्धोंका चार प्रकारका आस्रव-ज्ञान । ५ मृग । ६ हाथीकी कनपटीपर भी चढ़ जानेवाली ।

(८) अभिभावकोंसे

दो न विश्व-वारिधिको पार करनेकी सीख
कागदकी नाव बालुकामें अभी खेने दो ।
ज्ञान-रवि जीवन-प्रभातमें उगा है नहीं
शिशुता उषाके चरणारविन्द सेने दो ।
आँखोंके अखाड़ेमें कनीनिका[1]की कोर तक
खेल खेल अभिभावकोंको सुख लेने दो ।
फिर न मिलेगा कभी खेलना, न छेड़ो इन्हें,
बालक अभी हैं, कुछ और खेल लेने दो ।

(९) जब थे बालक

हँसता निशेश था हमारे हँसनेसे कभी
रोता वारिधर था हमारे अश्रु लानेसे ।
फूल भी हमारे फूलनेसे उठता था फूल
गाते कीर-कोकिल हमारे मंजु गानेसे ।
जब हम हठ करते थे तपता था रवि
होता तोय तरल हमारे खेल आनेसे ।
हम भी अलौकिक गुणोंसे कभी भूषित थे
झूठसे न चाव, मतलब न बहानेसे ।

(१०) पिंजर-बद्ध कीर

मेरे हरे पंखकी अनूप हरियाली यह
तेरी ही हरीतिमाके संग जुड़नेकी है ।

---

१ आँखकी पुतली ।

लाल-सा सुफल खा, विहंगम विहारकी है
खीरसे हमारी चित्त-वृत्ति मुड़नेकी है ।
अब न पसंद है बलंद[1] मान-मंदिर भी
करणी यहाँ न धरणीमें गुड़ने[2]की है ।
एहो, वन-देव ! लेके पिंजर उड़ेंगे हम
पूछ लें परोंसे यह बात उड़नेकी है ।

(११) प्रेम-पान

इन मदमाते, अलसाते, झुक जाते हुए
मस्त लोचनोंकी सौंह खाके पी गया हूँ मैं ।
होशके भी होश उड़ जायँगे न थोड़ी पी है,
सारा खुम[3]का खुम उठाके पी गया हूँ मैं ।
देख कल कुंतलोंकी कुंचित सँपेलियोंको
आई जो लहर लहराके पी गया हूँ मैं ।
तेरे ही वियोगमें विदग्ध अति आतुर हो
ऊब अकुलाके घबराके पी गया हूँ मैं ।

(१२) प्रकृति-नटी

बैठे हैं कदंबपै अलाप-मद-माते मोर
सुखद हरीतिमा[4]से अवनि अटी-सी है ।
राग छेड़ते हैं कल कोकिल-कलाप मंजु
नव्य जीव-जन्तुओंसे पृथिवी पटी-सी है ।

---

१ ऊँचे । २ नाश होने । ३ मटका । ४ हरियाली ।

मंद-मंद मेघोंके मृदंग बजते हैं मृदु
श्वेत बक-पंक्ति व्योम-पटपै जटी-सी है।
गा रहे अनूप खग-निकर सोहाग-राग
पावस-प्रमोद-युक्त प्रकृति नटी-सी है।

(१३) कालिदास

प्रतिदिन प्रातका पवन चौंर ढालता है
मंजु देव-लोकका गुफा-गृह सँवारा है।
नृत्य करती हैं छहों ऋतुएँ तुम्हारे यहाँ
होता कीर-कोकिल-मिलिंद-गान प्यारा है।
पाद-पीठ-लुंठित मुकुट कवि-नायकोंके
देख देख मिलता मुझे भी तो सहारा है।
संगमें विराजते कृताभिषेक[1] शारदाके
विश्व-बीच एक-छत्र शासन तुम्हारा है।

गिरि-शिखरोंकी मेघ-मंडित सु-भूमिकापै
एक दिन तांडव कृशानु-रेतने[2] किया।
त्यों त्यों नाचने लगी अनूप चंचलाकी गति
ज्यों ज्यों बार-बार सधी ताल घनने लिया।
तुमने उसी क्षण बजाया काम-वेणु ऐसा
जिससे हुआ यों द्रवीभूत शम्भुका हिया।
लेकर स्वकर्णसे मयूर-पक्ष अंबिकाने
सिरपै तुम्हारे मोर-मुकुट बना दिया।

---

१ जिसका अभिषेक किया गया हो। २ शंकर।

तुम जब पाँच मुखवालेकी[1] प्रशंसा कर
गाने लगे गान उस आठ भुजवालीके[2] ।
मेघ-घोष मूक बन सुनने स-मोद लगा
छूटे अवसानै[3] शम्पा[4] तरल-प्रणालीके ।
संभवै[5] कुमारका सदेह बन आगे हुआ
पीछे पड़ा काम वामा-सहित नगालीके[6] ।
बूँद-बूँद होके लाज ढलक दगोंसे पड़ी
ढलक-ढलक दग ढीले पड़े कालीके ।

(१४) गंगावतरण

छोड़ा एक बूँद ज्यों ही विधिने कमंडलसे
लमकी कु-मंडलँ[7]को कंप करती हुई ।
गगन गभीरकी गुफासे श्वेत सिंहिनी-सी
विद्युतकी झर झरना-सी झरती हुई ।
धाई सुर-धुनि जो धराको धूम-धामसे तो
हिम्मतसे होश करके भी हरती हुई ।
सप्त व्योम-मंडलके पारसे हजार धार
छूटी हो अपार हाहाकार करती हुई ।

सारा व्योम-मंडल अखंड फटने-सा लगा
टूटी उनचास थीं हवाएँ एक लातमें ।
दिग-दंतियोंके दिल दहल-दहल उठे
गंगाके प्रचंड प्रलयंकर प्रपातमें ।

१ शिव । २ पार्वती । ३ होश । ४ बिजली । ५ जन्म । ६ पर्वत-श्रेणी ।
७ भूमि-मंडल ।

घुमड़ पड़े हों घोर प्रलय पयोद जैसे
इन्द्र महाराजकी कशाँकी एक घातमें ।
इन्द्रके गलेसे शची, इन्द्र ऐरावत गले,
ऐरावत लिपटा लमक पारिजातमें ।

धारा धरणीपै गिरी पूँत करनेके लिए
पूतसे पयोभँवके प्रथित पताका-सी ।
या कि पाप-पुंज तम-तोमके विदारनेको
होने निराधार बही पुंजीभूत राका-सी ।
अथवा नरोंको नर-देवोंकी उपाधि देने
आई अवनीतलपै विबुध-बलाँका-सी ।
पूँछो उस औढर यतीसे किस भाँति गिरी,
गंगा फूल-माला-सी कि वज्रकी शलाका-सी ।

(१५) शान्त संध्या

रोकर शृगालोंने विदा किया दिवस वह
स्वागत मनाया रजनीका खग-गानने ।
तारिका-जटित वैजयन्ती फहरा दी आज
प्रथमा दिशामें अंधकारके वितानेंने ।
अरुण गुफामें किया जाकर निवेश अब
चरमाचलस्थ सप्त-सैंधव-विमानेंने ।
सारा रूप-रंग-ढंग भंग वसुधाका हुआ
भृकुटी कमान-सी चढ़ा ली आसमानने ।

---

१ कोड़ा । २ पवित्र । ३ कमल । ४ प्रेयसी । ५ फैलाव । ६ सूर्यका रथ ।

वेगवान पवन गया था किसी लोक मध्य
और, मंद मारुत कहींपै रम-सा गया।
श्याम वारि-वाहक विहाय चंचलाकी द्युति
किसी पवनाद्रिपै स-धैर्य जम-सा गया।
सुखद सरोवरपै चित्रित स-हास नभ
देखनेके हेतु तरु-वृन्द नम-सा गया।
दिव्य समालोक जो त्रिलोक जीतनेको चला
तलपै तड़ागके तनिक थम-सा गया।

पटल प्रशान्तिका पड़ा था रोदसीपै एक
बन्द हुई वायुकी मुधा[1] थीं सभी नाड़ियाँ।
झूलती हुई न देख पड़ती लताएँ कहीं
स्थिर हो रही थीं नागवल्लियों[2]की झाड़ियाँ।
अंजनसे अंजित विलोचन धराके कर
तमने बिछा दीं तरुओंपै श्याम साड़ियाँ।
चारों ओर मुदित विहँस-सी रही थीं मौन
कुंद-पारिजात-कामिनी[3]की फुलवाड़ियाँ।

ऐसी स्तब्धता थी व्याप्त नीरव खमंडलमें
झींगुरोंकी झनक तनिक न सुनाती थी।
नाचती दिखाती मौन-साँस अधरोंपै मंजु
नीरवता निःस्वन-संगीत निज गाती थी।

---

१ व्यर्थ। २ पानकी लता। ३ वृक्ष-विशेष।

एक क्षण जीवन-समर-श्रम भूल कर
शान्ति अपना ही रंग चित्तपै चढ़ाती थी।
संध्याकी मनोरमा अ-चेतन गंभीरतामें
एक महाचेतना भरी-सी दिखलाती थी।

(१६) मीराको विष

प्याला भरा विषका, गरलका, हलाहलका
लाया गया कंपित करोंसे पास मीराके।
छलक रहा था रंग झलक रहा था श्याम
लोचन लुभाये श्याम-सुरति-अधीराके।
" भूले-भटकोंको भगवान ही बतावे पथ "
मुखसे निवेदन कढ़ा यों धर्म-धीराके।
चित्तमें अनूप जन्म-जन्मकी पुराकृतिका[1]
जाग उठा ज्ञान ज्ञान-गहन-गभीराके।

उस विष-वाहक अघी[2]से इस भाँति बोली,
" आशा है तुझे कि तेरे विषसे डरूँगी मैं ?
कंठमें भी जब है विराजा नाम श्यामका तो
क्यों फिर स्व-प्राण कंठ-गत न करूँगी मैं ?
आयु कर पूरी अभिलाषा भी पिताकी कर
अमर बनूँगी, महा-मृत्यु निदरूँगी मैं।
वृन्दावन-वासी नंदलालकी उपासी, मैं तो
अबलौं मरी हूँ, मरती हूँ मैं, मरूँगी मैं।

१ संस्कार। २ पापी।

" एक दिन जाना काल-गालमें पड़ेगा जब,
तब श्याम-काय मृत्युसे यों डरना ही क्या ?
जीवनका प्याला इस प्यालेके समान ही है
भर तो चुका है, अब और भरना ही क्या ?
मृत्यु-प्रलयंकरी पुकार जो रही है खड़ी
श्यामकी रची है इस हेतु करना ही क्या ?
तोड़ ही चुकी हूँ नाता जब जगतीतलसे
जीना क्या दुखी हो, या सुखी हो मरना ही क्या ?

" मै तो बाल्य-कालमें लड़ी हूँ रोग-मंडलीसे
जिनकी न भीति कभी चित्तमें समाई है ।
सब व्यसनोंसे लड़ी आते ही युवापनके
मुझपै किसीने निज छाप न जमाई है ।
साससे लड़ी हूँ मैं ससुरसे लड़ी हूँ, और
पतिसे लड़ी हूँ साधु-संगति निभाई है ।
एरे विष-वाहक, विलोक उसी वीरतासे
मृत्युसे लड़ूँगी, यह अंतिम लड़ाई है ।

" ला तू, इस प्यालेको हवाले कर मेरे मित्र,
श्याम-नाम लेके पान इसको करूँगी मैं ।
छोड़के शरीर आधि-व्याधिकी समाधि यह
अगम अपार भव-सागर तरूँगी मैं ।
पार कर पीड़ाको, प्रशान्तिमें प्रवेश कर
शुद्ध समालोक-ओक अंकमें भरूँगी मैं ।

प्राणके भी प्राण पाके भव-दुख-त्राण पाके
काम-छवि-धाम श्याम-संग विहरूँगी मैं।

" ईश्वर क्षमा करें हमारे अभिभावकोंको
जिनसे जघन्य है कुकृति यह की गई।
सौंप चुकी श्यामको स्व-मन-तन-संपति जो
मुझसे कदापि अन्यको न कभी दी गई।"
यह कह मीरा हुई व्यस्त आत्म-चिंतनमें
लेके साँस ऐसी जैसी आजलौं न ली गई।
कुछ झुका जाके कुछ लोचन फिराके कुछ
ध्यान-सा लगाके विष-प्याला वह पी गई।

पानकर हाला मीरा मंद मुसकाई जब
हुई मुख-छवि मोतियोंसे भरी शुक्ति है।
नाच उठी उस श्याम-रंग-रँगी कामिनीके
श्याम अधरोंपै श्याम-श्याम-मयी उक्ति है।
मरती विलोकके कहा यों विष-वाहकने,
" देखो, मृत्यु कैसी अनिवार्य भारी भुक्ति है।
नाँद[1] उठी दीपककी अंतिम शिखा-सी वह
" श्याम-नाम सत्य, सत्य बोलो मृत्यु मुक्ति है।

(१७) रंभा

आदिम वसन्तका प्रभात-काल सुन्दर था,
आशाकी उषासे भूरि भासित गगन था।

१ भभक उठी।

दिव्य रमणीयतासे भासमान रोदसीमें
स्वच्छ समालोकित दिगंगना-सदन था ।
उच्छल तरंगोंसे तरंगित पयोनिधि था
सारा व्योम-मंडल-पटल भी अ-घन[1] था ।
आई तुम दाहिने अमृत बाएँ कालकूट
आगे था मदन पीछे त्रिविध पवन था ।

कर अपनेहीसे विकास अपना ही तुम
आई जलै-अलि[2]से निकल जिस कालमें ।
पाई प्रभा पंकज-पटलने पुनीत अति
आई आभा सारँग[3]के लोचन विशालमें ।
हो गई विलोक कमनीय सिंहिनीकी कटि
आई होंठ देखके अरुणता प्रवालमें ।
महिमा मराल-मंडलीमें दृष्टि आई, और
गरिमा समाई गजराजिनीकी चालमें ।

चाह इन्द्रको भी है तुम्हारे रूप-यौवनकी
अमरांगना भी हैं तुम्हारा संग चाहतीं ।
देव-कन्यकाएँ पास आतीं बल खाती हुई
छूना छोटे हाथोंसे तुम्हारा अंग चाहतीं ।
अपर अनूप अबलाएँ अमरावतीकी
देखना मनोरम भ्रुवोंका भंग चाहतीं ।

---

१ बिना बादलका । २ पानीका भौंर । ३ मृग ।

देव-वधुएँ भी यों तुम्हारे अंग-अंग-मध्य
लखना निरंग[1]का मनोज्ञ रंग चाहतीं ।

माना कि तुम्हारा रूप-यौवन अनन्त देवि,
थीं तुम कमल-कलिका-सी कान्त बालिका ।
खोजती रहीं क्यों अन्धकारमें रसातलके
काम-केलि-कौतुक-गृहोंकी मंजु तालिका ।
किन मणियोंमें दीप-रूप भरती थीं तुम
एहो, चारु चंचल दृगंचलकी चालिका ।
कौन-से प्रबालोंके पलंगपर बैठी हुई
गूँथती सुरोंके सुमनोंकी रहीं मालिका ।

खुल गये काम-कलियोंके दृग देखकर
मोहमयी रमणीयताकी राशि तनपर ।
युग युग निकल निकल आभा-अंबुधिसे
पाई है विजय सारी संसृतिके मनपर ।
ऋषि-मुनि अपनी तपस्याका सुभग फल
वार वार डालते तुम्हारे ही चरनपर ।
जबसे लगी है आँख तुमसे सुराधिपकी
दृष्टि पड़ती नहीं कुबेरके भी धनपर ।

थामके कलेजा बैठ जाते हैं युवा भी जब
तुम चारु चंचल दृगंचल चलाती हो ।

१ कामदेव ।

सुमन[1] सुरोंके भी प्रमत्त उठते हैं फूल
सौरभ दुकूलकी हिलोरसे हिलाती हो ।
गाकर सोहाग-राग वासवे[2]-सभामें तुम
सुर-श्रवणोंको सुधा-धार-सी पिलाती हो ।
अंचल हिलाती, छवि छाती, मन-भाती तुम
नूपुर बजाती, बल खाती कहाँ जाती हो ।

नाचती हैं सुंदर तरंगें छवि-सागरकी
जिनकी महान शोभा आप हरती हो तुम ।
हिल उठती हैं चोटियाँ भी वन-राजियोंकी
आन-बान-वाली जब तान भरती हो तुम ।
टूट टूट पड़ते सितारे उसके हैं जो कि
उन्नत उरोजोंपर हार धरती हो तुम ।
देहपै दुकूलकी हिलोर उठती है देवि,
अमर-सभामें जब नाच करती हो तुम ।

दिव्य देव-लोकके अनूप उदयाचलकी
तुम तो शरीरिणी उषा हो गजगामिनी ।
विश्व-वासनाके कुसुमित काम-कंजपर
रख पद-पंकज खड़ी हो भोरी भामिनी ।
अब तक प्रकट हुई न क्यों पयोनिधिसे
खोये कहाँ दिवस, बिताई कहाँ यामिनी ?
तुमको कहें क्या, न किसीकी तुम कन्यका हो,
माता हो किसीकी न किसीकी तुम कामिनी ।

---

१ पुष्प, हृदय । २ इन्द्र-सभा ।

शंघाईमें शान्ति

सारे दिवस अशान्त वायु-मंडलके ऊपर
भर्राये नभ-यान निधनकर पातित भूपर।
ऐसा कलुषित धूम नभोमंडलमें छाया,
फाटक ही पर फटी घोर हाटक-मुख[१]-माया ॥

शान्ति-सरोवर-मध्य नगर सरसीरुह-सा था,
मँड़राये क्यों मधुप मृत्युकी गाकर गाथा।
अहो! मनुजते, उड़ी उच्च ऊपर जितनी तू,
अधोपतित ही हुई आज भूपर उतनी तू ॥

घोषित करता सकल व्योममें दुरित दुराग्रह,
करता जीवन खड़ा अबल अक्रिय सत्याग्रह।

---

१ पीले मुँहवाले-जापानी।

जनता सब असहाय खड़ी बालक-सम निर्बल,
झेल रही अभिमन्युसदृश सब सेनापति-बल ॥

उड़े बैंकके वृन्द, उड़े विद्यालय सारे,
उड़े विशाल निकेत, उड़े पुर-ग्राम विचारे ।
उड़े धामके धाम, उड़े जन-प्राण-पखेरू,
शोणित ऐसा बहा, बही द्रव होकर गेरू ॥

हुआ सभ्यताका अकाल कंकाल नगर सब,
गिरे विशाल निवेश, गये अबला-शिशु भी दब ।
उड़ गंधककी गंध अंध करती जनताको,
उड़ी घोर बारूद विजित कर श्याम निशाको ॥

लक्ष लक्ष नर निहत खाइयोंमें यों सोये,
पड़े अबलताका कलंक शोणितसे धोये ।
कड़ कड़ करती क्रोश[1] महाघातक मशीन-गन,
भर्राहट कर रहे व्योममें व्योम-यान-गन ।

बरस चली गोलियाँ भूमिसे आसमानको,
गोले बरसे प्रलय, छिपाते भासमानको ।
विविध प्रान्तके लोग क्रान्त[2] हो शान्त हुए सब,
पड़ी लोथपर लोथ गये उड़ ग्राम-गेह अब ॥

* * * *

१ शब्द । २ विजित ।

अस्ताचलपर तपन[1] प्रकंपित-दीधितिवाला,
हुआ ताम्रके रंग छिपाकर निहित उजाला।
वासरका कर अंग-भंग यों अस्त हुआ है,
यथा युगान्त विलोक शोकसे त्रस्त हुआ है ॥

हुआ निशा-मुख रक्त रात्रि बन गई कालिका,
मृतक-समूह-सवार-हुई वह मुंड-मालिका।
आद्या थी जो कभी, आज बन गई अंतिका,
महाकालके निकट पुरी अथवा अवंतिका ॥

यह दिन ऐसा कुदिन महा दुर्दिन-सा आया,
किलक कालिका बनी भव्य भूतेश्वर-छाया।
माताएँ सब कूट कूट वक्षःस्थल रोईं,
बहुएँ विधवा हुईं हाय निर्जल-दृग सोईं ॥

शुष्क-अधर शिशु मरे, नगरमें शान्ति समाई,
ज्ञानी-जन, तुम लखो ज्ञान-विज्ञान-कमाई।
बिखर पड़ी वह आज धरातक शंघाईके,
मलवेमें दब गई, पड़ी तलमें खाईके ॥

जब कुछ दिनके बाद यहाँ महि-शोधन होगा,
मृत मनुजोंका फिर स-यत्न उद्बोधन होगा।
तब निकलेगी यहाँ, वही विज्ञान-कमाई,
करके जिसको चले गये हैं निप्पन[2] भाई ॥

१ सूर्य। २ जापानी।

टूटे शस्त्र, विदीर्ण वस्त्र दब रहे जहाँपर,
कुछ इनके अतिरिक्त मिलेगा नहीं यहाँपर ।
केवल सूखे हाड़ फावड़ेमें आवेंगे,
फट कपाल-कंकाल बिखर भूपर जावेंगे ॥

* * * *

वर्धमान कुछ हुई निशा मृत भट सोते हैं,
ओस-बुन्दके व्याज आज तारे रोते हैं ।
उठा कब्रसे प्रेत जीव सनयातसेनका[1],
अब न गगनमें शेष-घोष है एर-प्लेनका ॥

सारा नगर प्रशान्त मृत्युकी गोद सो रहा,
चारों ओर घोर नीरवका नृत्य हो रहा ।
किन्तु, सिपाही यत्र-तत्र दुःसह दुखपीडित,
पड़े कराह रहे भूपर हो मृत्यु-निमीडित[2] ॥

" हाय, प्रेयसी ! " कह करवट अंतिम ली भटने,
आननको ढक लिया मृत्युके भीषण पटने ।
अथवा कहीं स्व-नाथ ढूँढ़ती है विधवाएँ,
निर्बल करसे खोज रहीं निज सुत अबलाएँ ॥

कंपित-चरण अनेक प्रकंपित करसे माएँ,
रो पड़ती हैं धाड़ मार लख दाएँ बाएँ ।

---

१ चीनकी जागृतिके प्रथम पुरुष । २ कुचले गये ।

यत्र-तत्र सनयातसेनने सुना करुण स्वर,
महा मर्म-वेधन-कर दुख-प्रद अति भीषण खरे[1] ॥

सुनो, रो रही दूर कौन यह सुंदर नारी,
कहीं पा गई स्व-पति यत्न करके वह भारी ।
देख रक्त-रंजित आनन अपनी सुध भूली,
धाड़ मार कर रुदन कर उठी विपति अतूली ।

बहुत खोजके बाद मिला है वक्षःस्थल सो,
केशोंका उपधान[2] रहा कुछ पहले कल जो ।
बड़े यत्नके बाद मिला है वह कर प्यारा,
एकमात्र जो रहा सदैव अपार सहारा ॥

धूलि-धूसरित देह देखकर धाड़ मार कर,
विपदा रो ही पड़ी धैर्य-अंबोधि पार कर ।
रोदन सुन सनयातसेनका कँपा कलेजा,
इसके पतिको, अहो ! समरमें किसने भेजा ?

इस रमणीका विरह-प्रलय इतना घातक है,
जैसे जलके स्थान वज्र पाता चातक है ।
पाकर श्वास-समीर नेत्र-घन घुमड़ रहा है,
करुणा-पारावार कंठसे उमड़ रहा है ॥

---

१ तीक्ष्ण । २ तकिया ।

शिशु गोदीमें पड़ा पड़ा रोता अजान है,
पिता कहाँको गया स्वप्नमें भी न ध्यान है।
माता सुत-मुख देख देख आगे बढ़ती है,
यथा प्रीति निज मंत्र मृत्युके मुख पढ़ती है ॥

*   *   *   *

देख दृश्य सनयातसेनका भी दिल दहला,
याद आ गया उन्हें वचन अपना वह पहला।
बोल उठे रोदन-तत्पर उस सुकुमारीसे,
ढाढस देते हुए लगे कहने नारीसे—

"धन्य धन्य तव धव¹, स्वदेश-हित प्राण त्याग कर,
गया अनृत²को छोड़, सत्यके धाम भाग कर।
परम उच्च आदर्श मनुजताका पालन कर,
हुआ देशके हेतु वीर मरनेको तत्पर ॥

"होकर परम स्वतंत्र लड़ा स्वाधीन भावसे,
हँस हँस खेला समर-मध्य चौगुने चावसे।
निराकार हो गया अपरिचित अवकाशोंमें,
उसे खोजती खड़ी बावली, क्यों लाशोंमें? ॥

"अविदित नरको विदित सत्य-शोधन करता है,
वही अमर है जो स्वदेशके हित मरता है।

---

१ पति। २ झूठ।

कैसे कैसे वीर भूमिपर मरे पड़े हैं,
सब स्वदेशके अंक सीसको धरे पड़े हैं ।

" या स्वदेश-भू देख पड़े वक्षःस्थल ताने,
प्राण उड़ गये कहाँ एक जगदीश्वर जाने ।
अब न समरकी हाँक जगा सकती है इनको,
व्योमयानकी झपट भगा सकती क्या इनको ?

" इनकी कीर्ति महान सकल इतिहास पार कर,
अमर काव्यके घाट सुभट गणको उतार कर ।
फैलेगी सब ओर देश आंदोलित होगा,
विहगोंसे फिर शून्य विटप कल्लोलित होगा ॥

" आज यहाँपर महामृत्युका नृत्य हुआ है,
पहले कभी न हुआ, अहो ! वह कृत्य हुआ है ।
यह भीषण संहार नगरका नगर नष्ट है,
देख देख यह कलुष कष्टको हुआ कष्ट है ॥

" ग्राम रुधिर-मय हुआ रक्तके बहे पनारे,
अति अलक्त हो रहे नदीके उभय किनारे ।
चिल्लाई नारियाँ अभ्रके कान फोड़कर,
वायु-यानके संग उड़े असु देह छोड़कर ॥

---

१ बादल । २ प्राण ।

“ संगीनोंपर बिद्ध देख बालक माताएँ,
रो रो संज्ञा-हीन[1] हुईं निर्बल अबलाएँ ।
अहो ! दीनकी आह न हरि भी सह सकते हैं,
देखें कैसे शत्रु नम्रता निज ढकते हैं ॥

“ मरे पड़े जो वीर यहाँ निजदेशहेतु हैं,
पारतन्त्र्यके राहु, त्यागके उच्च केतु हैं ।
बुद्धिवाद यों भले क्षणिक सिद्धान्त बघाड़े,
किन्तु सदा चारित्र्य-शक्ति आती है आड़े ॥ ”

*　　*　　*　　*

इतना कहकर मौन हुए सनयात अंतमें,
देखें होगा किस प्रकारका प्रात अंतमें ।
देखेगा रवि निहत अमरताके प्रकाशमें,
होगी अभिनव सृष्टि निहित जो निखिल नाशमें ॥

रक्त-बीज-से विपुल वीर भूपर जनमेंगे,
क्या फिर सुभट-समूह जागकर लोहा लेंगे ?
जब तक दोमें एक मरेगा नहीं समरमें,
तब तक जाती धरा रहेगी काल-कवरमें ॥

बजता तब तक शंख रहेगा रण-सज्जाको[2],
पृथ्वीका परिधान पटल होगा मज्जाका ।

---

१ बेहोश । २ सजावट ।

तब तक आहत सुभट, श्रमित हो, अब सो लो तुम,
क्यों अचेत-से पड़े, उठो पेटी खोलो तुम ॥

नहीं मृत्युसे मरे, नींदमें ही सोते हो,
घावोंके मिष हँसो, रक्तसे भू धोते हो।
हुई महान-पवित्र भूमि सब चीन देशकी,
गाथा हुई अशेष, अहो ! इस नाम-शेषकी ॥

यों ही सातों गगन सदा चलते रहते हैं,
भले-बुरे फल समय-वृक्षमें ही फलते हैं।
आज शान्ति है, आज निधन है, आज निलय है,
आज क्रांति है, आज मृत्यु है, आज प्रलय है ॥

कल सक्रिय सब देश प्रभुत्व-समुच्चय होगा,
क्षयका अक्षय ज्ञान-कोष कल ही क्षय होगा।
सकल देश आलोक-ओक-मय हो जावेगा,
पारतंत्र्य, आलस्य कलुष क्षय हो जावेगा ॥

समाप्त